कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

# वसुधा

Year 15, Issue 58
April – June, 2018

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore - Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

संपादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १५ - अंक ५८, अप्रैल - जून २०१८

# शब्दभेदी बाण

## पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

शब्दवेधी बाण उनके पी लिए

प्राण देकर हम दुबारा जी लिए

किन्तु अपनों के ज़हर के तीर से

शब्द ने बींधा हमें कुछ इस क़दर

बिच्छुओं के डंक खाकर संत-से

जी रहे हर साँस पर झरते हुए.

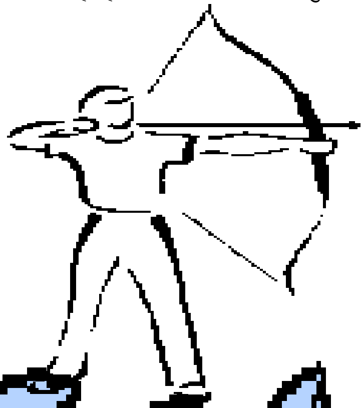

# वसुधा

## संपादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)
भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित


| शीर्षक | रचयिता | पृष्ठ |
|---|---|---|
| सम्पादकीय | | २ |
| रामचरितमानस | पं. केशरीनाथ त्रिपाठी | ४ |
| प्रच्छन्न | पद्मश्री डॉ. नरेंद्र कोहली | ७ |
| प्राणपरिमल | मनोरमा तिवारी | १५ |
| पारिवारिक जीवन का आनंद | पद्मविभूषण लालकृष्ण आडवाणी | १६ |
| ओ सुख चाहने वालों! सुनो.... | आचार्य विद्यासागर जी महाराज | २० |
| तुम और उत्पादन | डॉ. दाऊजी गुप्त | २१ |
| मातृभाषा से ही खुलते हैं अन्य भाषाओं के द्वार | प्रो. गिरीश्वर मिश्र | २२ |
| मेरा देश | डॉ. स्नेह ठाकुर | २४ |
| ससुर जी उचाव | पद्मश्री डॉ. अशोक चक्रधर | २८ |
| मातृ-दिवस | ओम गुप्ता | २९ |
| एक मैं एक वो | देवी नागरानी | ३० |
| बरसात न होती | धनंजय कुमार | ३४ |
| सभ्यता और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू | मदन लाल गुप्ता | ३५ |
| चिड़िया और मानव | शकुंतला बहादुर | ३८ |
| इण्डिया हटाओ – भारत बनाओ | निर्मल कुमार पाटोदी | ४० |
| साहित्य की सुप्त चेतना को जाग्रत करता योगी – रवीन्द्र नाथ ठाकुर | सपना मांगलिक | ४१ |
| शब्दभेदी बाण | पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि | १अ |
| डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार | | ४४अ |


**रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक को आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।**

**रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :**
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription..........$25.00, भारत - रु. ६००.००
डाक द्वारा By Mail $35.00, International Mail $40.00
Website: http://www.Vasudha1.webs.com
e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

# संपादकीय

परिवर्तन शाश्वत नियम है. समय का पहिया घूमता ही रहता है. कैनेडावासियों के लिए अप्रैल का आगमन बड़ा ही आनंददायी होता है क्योंकि इस समय का चक्र उसे शिशिर के ठिठुरते अनुभवों से मुक्त कर वसंत की बाँहों के झूले में आनंदित हो झूलने-झूमने की इज़ाज़त देता है. कामदेव अपने सोलह श्रृंगार सहित, पुष्प-धनुष-बाण लिए, जन-मानस को मोहित कर, आनंद-सागर में आलोड़ित करने आ पहुँचते हैं. वास्तव में कैनेडा में वसंत का दोहरा महत्त्व है क्योंकि यह न केवल शिशिर की त्रास से मुक्ति दिलाता है वरन् यह शिशिर और ग्रीष्म के बीच की संधिकाल का समय है; और इसीलिए यह अपनी मनोरमता के लिए तो प्रिय है ही, साथ ही यह ग्रीष्म के आगमन का सूचक भी है. यह अहसास कि इस मनमोहक ऋतु का न केवल आगमन वरन् इसका अंत भी सुखदायी ग्रीष्म ऋतु के आगमन में होगा, यहाँ के निवासियों की हृदय-तंत्रियों को जिस आनंदानुभूति से गुदगुदा जाता है, उस अहसास का वर्णन अवर्णनीय है. भुक्त-भोगी ही इसे जान सकता है. गुड़ की मिठास वही बता पाता है जिसने गुड़ का सेवन किया हो. अत: कैनेडा-निवासियों के लिए जहाँ वसंत स्वयं उत्सुकता से उत्कंठित हो प्रतीक्षा का एक महत्वपूर्ण कारण है, वहीं उसका आगमन भविष्य में जो चिर-प्रतीक्षित सौगात लायेगा, वह उसके लिए उससे भी अधिक अधीरता से उत्कंठित हो प्रतीक्षा का एक और महत्वपूर्ण कारण बन जाता है. वसंत के बाद कैनेडा की मनभावन चिर-प्रतीक्षित ग्रीष्म ऋतु का आगमन होगा, वह ऋतु जिसके लिए सम्पूर्ण देश हर वर्ष पूरे साल ही अधीरता से प्रतीक्षा करता रहता है. ठंडी हवा के थपेड़ों, शिशिर के प्रहारों, हिमपात के झंझावातों की ठोस लड़ाई से लड़ने-जूझने के लिए वह आगत ग्रीष्म ऋतु के कल्पना-लोक में डूबता-उतराता उस समय की आनंद-प्राप्ति की अनेकानेक योजनाएँ बनाता है. भविष्य के सपनों के ताने-बाने बुनता हुआ उसके आधार पर वह वर्तमान की वास्तविकता के गरल को कंठ से नीचे उतारता, पचाने का प्रयत्न करता है. ये रंगीन सपने उसके रक्षा-कवच की भूमिका निभाते हैं. इसीलिए वसंत के आगमन का सूचक अप्रैल माह यहाँ के निवासियों में नव-स्फूर्ति संचरित कर, मन-प्राण उल्लसित कर, ठूँठ खड़े पेडों को नई कोंपलों से, नव-पल्लवों से सज्जित कर, प्रकृति की लुभावनी शक्ति का शंख-नाद बजा, जीव-जगत् को एक नई ऊर्जा से स्पंदित कर ऊर्जस्फीत कर देता है. हर मन-प्राण हर्षोत्साहित हो खिलखिला उठता है.

टोराण्टो कैनेडा की एक इमारत के सातवें मंजिल पर कोंसुलाध्यक्ष माननीय श्री दिनेश भाटिया जी के संरक्षण में भारतीय कोंसुलावास के सभा-कक्ष, भारत भूमि पर, कोंसुल श्री डी.पी. सिंह जी के सफल निर्देशन में प्रवासी दिवस एवं विश्व हिन्दी दिवस का भव्य समारोह सम्पन्न हुआ. प्रिय भाषा हिन्दी के प्रति काव्याभिव्यक्ति के साथ ही साथ इस अवसर की एक विशेषता यह भी थी कि इसमें बच्चों ने हिन्दी में अपने उद्गार व्यक्त किए. हिन्दी की मशाल जलाए रखने हेतु भावी पीढ़ी की सहभागिता अत्यंत आवश्यक है. प्रस्तुतिकर्ता एवं श्रोता, सभी ने बढ़-चढ़ कर उत्साहपूर्वक, आनंदित हो, इस हिन्दी पर्व को अविस्मरणीय बनाया. देश बने इस विदेश में अपनी भारत भूमि पर खड़े हो, अपनी भारत माता व अपनी प्रिय भाषा 'हिन्दी' के प्रति काव्य-पुष्पांजलि अर्पित करने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ. यह अवसर प्रदान करने हेतु कोंसुलाधीश श्री दिनेश भाटिया जी तथा संयोजक श्री डी.पी. सिंह जी की आभारी हूँ.

मेरे बड़े भाई, वसुधा के परम हितैषी, ५०० अँग्रेजी-हिन्दी ग्रंथों/पुस्तकों के विश्व-विख्यात लेखक-सम्पादक, नृ-वैज्ञानिक व प्रतिष्ठित कवि, हिन्दी-अँग्रेजी साहित्य में पद्मश्री से विभूषित डॉ. श्याम सिंह शशि को भारत सरकार ने “नीति आयोग” (सोशल जस्टिस एंड एम्पॉवरमेंट डिवीजन) का वरिष्ठ विशेषज्ञ मनोनीत किया है. भारत का यह सबसे बड़ा नीति सम्बन्धी आयोग है जिसके सर्वोच्च-अध्यक्ष माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी हैं. नीति आयोग को पूर्व में “प्लानिंग कमीशन” (योजना आयोग)

कहा जाता था, जहाँ अँग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में "योजना" जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका के निदेशक/महानिदेशक शीर्षस्थ पद पर डॉ. शशि अनेक वर्षों तक भारत सरकार में कार्यरत रहे हैं. हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के लिए उनका अभूतपूर्व योगदान प्रशंसनीय है. डॉ. शशि के अँग्रेजी ग्रंथों में कुछ प्रमुख नाम हैं – "एन्सइक्लोपीडिया इंडिका" २०० खंड, "नोमेड्स ऑफ इंडिया", "रोमा द जिप्सी वर्ल्ड" आदि. (हिन्दी) "अग्निसागर" (महाकाव्य) पर अनेक पीएच.डी. ग्रन्थ लिखे गए हैं तथा कई विश्वविद्यालयों में उसे पाठ्य-पुस्तक के रूप में भी पढ़ाया जाता रहा है. उनके २५ कव्य-संग्रह, २५ बाल-कृतियाँ और अनेक यायावर-ग्रन्थ तथा अनेक विषयों पर पुस्तकों के साथ-साथ अँग्रेजी के 'हिंदुस्तान टाइम्स', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'स्टेट्स मैन' आदि व हिन्दी के 'नवभारत टाइम्स', 'हिंदुस्तान टाइम्स', 'धर्मयुग' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित हुए है. ठाकुर साहब व मेरी ओर से अग्रज शशि जी को शत्-शत् बधाई.

हिन्दी सेंटर, जिसकी संरक्षिका होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है, तथा मॉडलिंग्वा समूह के संस्थापक मेधावी श्री रवि कुमार विश्व सरकारों के शिखर सम्मलेन के छठवें संस्करण में सम्मलेन के अधिकारिक अनुवादक के रूप में आमंत्रित किए गए जहाँ वे शीर्ष नेताओं के भाषणों का हिन्दी से अँग्रेजी तथा अँग्रेजी से हिन्दी में बहुत ही कुशलतापूर्वक अनुवाद कर, विभिन्न नेताओं की भाषण शैली, लय/लहजे तथा गति से अपना सामंजस्य बिठा, विश्व की गणमान्य विभूतियों के इस विशाल मंच पर सबकी सराहना के पात्र बने. यह शिखर सम्मलेन ११ से १३फरवरी तक दुबई में आयोजित हुआ तथा इसमें भारत के प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी सम्मानित अतिथि के रूप में आमंत्रित थे. प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के मार्गनिर्देशों पर कार्य करते हुए, इस आयोजन में अनुवादक के रूप में श्री कुमार की उपस्थिति से हिन्दी को काफी बढ़ावा मिला क्योंकि जानकारी का आदान-प्रदान सिर्फ अँग्रेजी ही नहीं बल्कि हिन्दी में भी किया गया. अनुवाद के अपने कौशल एवं सूचना-प्रौद्योगिकी, कृत्रिम-बुद्धि, डाटा-प्रबंधन, राजनीति, लोक नीति, व्यापार, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य, सयुंक्त राष्ट्र संघ तथा इसके कार्यकलाप, विधि तथा समसामयिक घटनाक्रम की विद्वत्तापूर्ण व्यापक समझ के कारण श्री कुमार विश्व के कोने-कोने से आए एक बड़े श्रोता समूह से संवाद स्थापित करने में भी सफल रहे. यह जानना उत्साहवर्धक है कि श्री कुमार को विश्व के कुछ शीर्ष नेताओं जैसे फ्रांस के प्रधानमंत्री एदुआर्द फिलिप, विश्व आर्थिक मंच दावोस के संस्थापक तथा अध्यक्ष प्रोफेसर क्लाउस श्वाब, आर्थिक सहयोग तथा विकास संगठन के महासचिव एग्रेल गुरिया, अंतर्राष्ट्रीय मानवतावादी शहर की अध्यक्षा राजकुमारी हया बिन्त अल हसन, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की प्रबंध निदेशिका क्रिस्टीन लेगार्ड, विश्व बैंक के अध्यक्ष जिम यौंग किम, सीएनएन के रिचर्ड क्वेस्ट, भौतिक-शास्त्री तथा भविष्य विज्ञानी प्रोफेसर मिचिओ काकू, एसएपी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी बिल मैकडरमॉट, वक्ता तथा न्यू-एज आन्दोलन की प्रमुख हस्ती श्री दीपक चोपड़ा, Publicis के मुख्य कार्यकारी अधिकारी मौरिस लेवी, विश्व स्वास्थ्य संगठन के महानिदेशक डॉक्टर टेड्रोस एधानोम, विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक रोबेर्तो अज्वेदो, यूनेस्को की महानिदेशक ऑड्रे अजौले, शिक्षा तथा मानव संसाधन परिषद् के अध्यक्ष शेख अब्दुल्लाह बिन ज़ायेद अल नाह्यान के **लिए अनुवाद करने का अवसर मिला. यह आयोजन सरकारी, भविष्यवादी, तकनीकी तथा आविष्कार के क्षेत्रों से आए प्रतिनिधियों की उपस्थिति में जानकारी के आदान प्रदान, वैचारिक नेतृत्व तथा मानव विकास के क्षेत्र में नीति निर्माताओं, विशेषज्ञों तथा अन्वेषकों के लिए पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने तथा भविष्य की चुनौतियों हेतु सृजनात्मक-प्रोत्साहन के नवीन आविष्कारों, सर्वोत्तम अभ्यासों तथा युक्तिपूर्ण समाधानों के प्रदर्शनकर्ता के रूप में उभरा है. श्री कुमार भविष्य की अनेकों सम्भावनाओं, उसके भावी रूप तथा कैसे हिन्दी उस भविष्य में एक अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाने जा रही है, इसकी झलक से अत्यंत प्रभावित हुए. प्रिय रवि को इस अभूतपूर्व सफलता के लिए शत्-शत् बधाई एवं मंगलमय भविष्य के लिए ठाकुर साहब व मेरी शुभाशीष.**

**नव वसंत सबके जीवन में नई उमंग लाए, इसी शुभाकांक्षा के साथ, सस्नेह, स्नेह ठाकुर**

# रामचरितमानस

**पं. केशरीनाथ त्रिपाठी**
(गवर्नर पश्चिम बंगाल)

राम और कृष्ण भारत के जन-जन के आराध्य हैं, जन-जन के कंठहार हैं. ये दोनों हमारे जीवन के, हमारी संस्कृति के, हमारी आचार-संहिता के, धर्म के, दृष्टि के, योग के, योग क्षेम के, जनकल्याण के आदर्श चरित्र हैं. इनका चरित्र मानवता की चरम स्थिति है. उस तक पहुँचना, उन आदर्शों का संस्पर्श करना प्रत्येक भारतीय की चिराकांक्षा है, किन्तु उन तक पहुँच पाना मानव के लिए असम्भव-सा है इसलिए उनके चरित्र को उनके व्यवहार को, उनकी कार्य-सारिणी को हम मानवेतर मानते हैं, दैवी कहते हैं, अलौकिक की संज्ञा से अभिहित करते हैं. उनके अलौकिक चरित्रों से परिचित कराने का कार्य किया है हमारे कवि मनीषियों ने. वाल्मीकि, वेदव्यास और तुलसीदास के नाम इस क्षेत्र में अग्रगण्य हैं.

तुलसीदास जी का शाश्वत ग्रन्थ 'रामचरितमानस' अनेक दृष्टियों से अनुपम है, अलौकिक है, असाधारण है. इस ग्रन्थ ने अनेक लोगों को पी.एच.डी., डी.लिट्. की उपाधियाँ दी हैं. अनेक व्यक्तियों को आजीविका दी है. अनेक को विद्वान बनाया है. वस्तुत: यह ग्रन्थ भारतीय संस्कृति और सभ्यता की आचार-संहिता है. भारत के सच्चे स्वरूप को इसके माध्यम से जाना-पहचाना जा सकता है.

'रामचरितमानस' अनेक दृष्टियों से अनूठा ग्रन्थ है. यह धर्म का ग्रन्थ है, दर्शन का ग्रन्थ है, भारतीयता का ग्रन्थ है, राष्ट्रीयता का ग्रन्थ है, शाश्वत मूल्यों की स्थापना का ग्रन्थ है, जीवन्त और प्राणवंत परम्पराओं का ग्रन्थ है और संक्षेप में कहें तो समग्र रूप से मानवता के चरम विकास का ग्रन्थ है.

साधारण बोलचाल की भाषा में लिखे हुए इस ग्रन्थ में वस्तु-तत्त्व अत्यंत गहन और गूढ़ है, इसलिए इसकी व्याख्या के लिए, इसके अर्थ के अवगाहन के लिए, इसके प्रदेय के आकलन और मूल्यांकन के लिए देश में ही नहीं विदेशों में अनेक कार्यक्रम, समारोह, गोष्ठियाँ, संगोष्ठियाँ, विचारगोष्ठियाँ आयोजित होती रहती हैं. अपने देश में तुलसी के जन्मस्थान राजापुर तथा कानपुर के प्रयाग नारायण शिवाले में प्रतिवर्ष नियमित रूप से समारोह आयोजित होते रहते हैं, जिसमें मानस मर्मज्ञों के प्रवचन होते हैं तथा मनाससेवियों को सम्मानित-अलंकृत किया जाता है. देश भर में इसी प्रकार के आयोजन होते रहते हैं.

श्री प्रयाग नारायण शिवाला, कानपुर में आयोजित मानस-संगम कार्यक्रम में डॉ. सुरेश ने मानचित्र की बात कही. मेरी आँख के सामने भी दो त्रिभुज लहरा रहे हैं. त्रिभुज का एक कोना है जम्मू और कश्मीर, दूसरा कोना है कोहिमा, मेघालय और उसके आगे तीसरा कोना है कन्याकुमारी. यह देश का त्रिभुज है. दूसरा त्रिभुज है तुलसी और राम, कृष्ण और गीता तथा हिन्दी. अगर दोनों त्रिभुजों को एक-दूसरे पर रख देना पड़े तो जो मानचित्र बनता है, उसका नाम है भारत.

बिना राम और तुलसी की रामायण के, बिना कृष्ण और गीता और हिन्दी के भारत की कल्पना नहीं की जा सकती लेकिन हिन्दी इतनी समृद्ध होते हुए भी, भाषा-प्राचुर्य होते हुए भी, शब्द-सामर्थ्य और शब्द-अलंकृत होते हुए भी अपने को अनाथ पा रही है. डॉ. दुबे ने कुछ अनुभव आपके सामने रखे. जब मैं एक सरकारी कार्य से बैंकॉक गया, थाईलैंड में, तो वहाँ प्रवासी भारतीयों ने एक

बैठक की. उस बैठक में संचालक ने कहा कि हम लोग अँग्रेजी में बात करते हैं और आपकी समझ में नहीं आएगी इसलिए इस कार्यक्रम का हिन्दी में संचालन कर रहा हूँ.

यह उपकार की भावना थी या हिन्दी को विदेश में भी अपने लोगों द्वारा गौण स्थान देने की भावना थी, मैं समझ नहीं पाया लेकिन उसी समय मेरे मन के अन्दर एक दूसरे देश का चित्र आया जहाँ आज भी उस देश के सर्वोच्च पद पर आसीन होने के लिए न केवल हिन्दी जानना आवश्यक है बल्कि प्रवाह के साथ हिन्दी बोलना भी आवश्यक है. ऐसी वहाँ के संविधान में व्यवस्था है. उस देश का नाम है सूरीनाम और आज इस मंच पर सूरीनाम से आये हुए कवियों और कवयित्रियों का मैं अभिवादन करता हूँ.

हिन्दी ने जहाँ से जन्म लिया, वही कोख शायद धीरे-धीरे उसे नकार रही है. अगर कोई माँ अपने पुत्र को नकारती है, तो सुपुत्र को और उसके वंशज को स्वाभाविक रूप से क्लेश होता है. कहीं-न-कहीं उस क्लेश की छोटी-सी मात्रा को लेकर हम सब आज यहाँ बैठे हैं. हिन्दी राजनीति का शिकार हो रही है. हिन्दी सामाजिक परिस्थितियों के कारण किसी शिकंजे में फँस गई है, या हिन्दी इस देश की अर्थनीति से जकड़ गई है, यह चिंतन का विषय है. देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ऐसा लगा था कि हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी और राजभाषा भी. हिन्दी देश की राजभाषा हो, यह प्रस्ताव उत्तर भारत के किसी व्यक्ति ने नहीं किया. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने किया लेकिन अंतरिम व्यवस्था कुछ दिन तक चालू रहेगी इसका समर्थन करने वाले लोगों ने, जो उस समय देश के कर्णधार थे, कुछ समय तक अँग्रेजी को शासकीय भाषा बनाए रखने का अनुमोदन कर दिया और हमारी और आपकी संतुष्टि के लिए संविधान में प्रावधान कर दिया गया कि हिन्दी के संवर्धन के लिए शासन निरन्तर प्रयासरत रहेगा. इतने वर्षों के बाद हिन्दी इस देश में आएगी और फिर शुरू हो गया राजनीति का विकृत खेल. लोग धीरे-धीरे हिन्दी को भुलाने की कोशिश करने लगे. हिन्दी इस देश का प्राण है. हिन्दी भारत की आत्मा है. हिन्दी से विदेशों में भारत की पहचान है. हम मूक और कहीं असहाय, समय की इस चाल को देखते रहे.

रामचरितमानस के रूप में गोस्वामी तुलसीदास के पदों का नए रूप में आकलन मूल्यांकन करते हुए हम कह सकते हैं कि तुलसी ने समाज को जोड़ने की कोशिश की और आज इस बिखरते हुए समाज को इस जोड़ने वाले तंत्र की, मन्त्र की अत्यधिक आवश्यकता है. हम जाति के नाम पर बँट रहे हैं, वर्ग के नाम पर बँट रहे हैं, सम्प्रदाय के नाम पर बँट रहे हैं और शायद इसलिए तुलसी ने शम्बूक-वध का जिक्र अपने 'रामचरितमानस' ग्रन्थ में नहीं किया कि कहीं सामाजिक भेद-विभेद की भावना न सामने आ जाए. जीवन-मूल्य हमारे लिए सर्वोपरि हैं. किसी ऐसी बात का चित्रण न करो, जिससे समाज के किसी वर्ग में मतभेद हो जाए और वह निन्दा का विषय हो जाए. किसी कारण विवाद उत्पन्न न हो, इसलिए तुलसी ने 'रामचरितमानस' में सीता के निष्कासन का भी उल्लेख नहीं किया क्योंकि समाज का एक वर्ग यदि उसे स्वीकार नहीं करता तो तुलसी के राम स्वीकार्य नहीं होते. विवादों से राम को उठाकर इस देश की संस्कृति के संरक्षक के रूप में तुलसी ने जिस राम को स्थापित किया है, आज हम सब के लिए वे पूज्यनीय हैं.

आज शासक का धर्म शोषणमुक्त समाज स्थापित करना कहा जा रहा है. 'रामचरितमानस' उठाकर देख लीजिए, तुलसी शोषण के विरुद्ध थे. शासन बुद्धि और विवेक से चलाया जाता है. विभाजित श्रद्धा समाज को बाँटकर रख देती है. बुद्धि, विवेक, शासन, अनुशासन, श्रद्धा सैंकड़ो बार 'रामचरितमानस' में इनके प्रसंग आए हैं. हम कहते हैं कि धर्म उस शक्ति का नाम है जो धारण कर सके तो रामायण भी उस शक्ति का नाम है जिसने हमारे और आपके समाज को एकता प्रदान की है.

मानस-संगम कार्यक्रम की जितनी सराहना कि जाए उतनी कम है और इसके आयोजक पं. बद्रीनाथ तिवारी को 'मानस-संगम' कार्यक्रमों के लिए साधुवाद. मैं अपनी कविता के माध्यम से इसे निरन्तर जारी रखने के लिए उत्साहित करना चाहूँगा –

"ऊँचे, गहरे, असीमित,
गगन, पाताल, क्षितिज
ये शब्द उनके लिए हैं,
जो इस धरती पर रहते हैं.
आकाश की ऊँचाई,
पाताल की गहराई,
प्रगति, उन्नति और अवनति
इन सबके मानदण्ड वही हैं
जिन्हें धरातल हम कहते हैं.
किनारों से बँधा हुआ
निकास रहित
चाहे थोड़ा हो या अधिक
पोखरे का पानी
सड़ जाता है
या सूख जाता है
फिर तलहटी की
सड़ी, फटी माटी
पूछती है कि
यथास्थिति भी कोई जीवन है
या मृत्यु का दूसरा नाम.
पर सरित प्रवाह की तरंग
नभ को छूने का सदैव करती प्रयास
भँवरों के साथ पाताल में जाकर
करती चौदह रत्नों की तलाश
और फिर ऊपर आती
किनारों को चूमती, कहती
और बढ़ जाती कि
स्थिरता ही पलायन है,
गतिशीलता जीवन."

"चरैवेति".

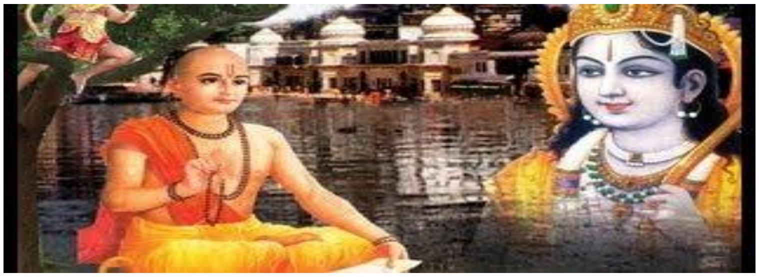

# प्रच्छन्न

**पदमश्री डॉ नरेन्द्र कोहली**

रानी सुदेष्णा ने ध्यान से अपने सामने खड़ी उस स्त्री को देखा, जिसे अभी-अभी राजप्रासाद की रक्षिकाएँ पकड़ कर लाई थीं। उन्हें यह स्त्री प्रासाद की रक्षा करने वाले सैनिकों ने सौंपी थी। उसे प्रसाद के सम्मुख निष्प्रयोजन डोलते फिरने तथा भीड़ इकट्ठी कर यातायात के आवागमन में विघ्न उपस्थित करने के अपराध में पकड़ा गया था। प्रहरी समझ नहीं पाये थे कि वह स्त्री लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती थी, अथवा सैनिकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर, उनको किसी अन्य दिशा से असावधान कर देना चाहती थी। आजकल सेनापति कीचक नगर में नहीं थे, सेना का एक बड़ा भाग भी सेनापति के साथ ही बाहर गया हुआ था। ऐसे में अनेक शत्रुओं द्वारा नगर में उत्पात रचे जाने की सम्भावना हो सकती थी। और फिर एक इतनी असाधारण रूपवती स्त्री, स्वयं को जनसाधारण की दृष्टि से छिपाने के स्थान पर बीच राजमार्ग में खड़ी होकर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करे, तो सैनिकों को किसी षडयंत्र की आशंका का होना स्वाभाविक ही था।

रानी की दृष्टि कह रही थी कि यह कोई साधारण स्त्री नहीं थी। उसका रूप असाधारण था। ऐसी स्त्रियाँ मार्गों में व्यर्थ ही मँडराती नहीं फिरतीं। उसके वस्त्र इस समय अवश्य मलिन थे। केश भी वेणीबद्ध नहीं थे।... किन्तु कैसे केश थे वे। किसी भी स्त्री को सहज ही ईर्ष्या होगी उसके इन केशों से। घुटनों तक लम्बे और लहराते हुए ऐसे सुन्दर केश, कि कोई भी स्त्री उन्हें देखती ही रह जाये, और पुरुष का मन उसमें बँध-बँध जाए। कौन उनका स्पर्श नहीं चाहेगा। अमावस्या-से घने काले केश। रानी का अपना मन ही मुग्ध होता जा रहा था।... अभी तो इस स्त्री ने अपना सारा वेश मलिन बना रखा था।... किंतु कौन नहीं देख सकता था कि नील कमल-सा उसका वर्ण था। लगता था कि यात्रा या किसी अन्य कारण से, वह इस समय मलिन तथा रेणु आच्छादित-सी दिख रही है। लगता नहीं था कि कई दिनों से मुख भी धोया हो...

'कौन हो तुम?' रानी ने पूछा।

'कोई भी होऊँ, पहले तो मुझे तुमसे यह पूछना है कि मुझे इस प्रकार पकड़ कर क्यों लाया गया है, जैसे मैं कोई अपराधिनी हूँ?' उस स्त्री ने सतेज स्वर में पूछा।

'ऐ।' एक रक्षिका ने आगे बढ़कर उसे एक झटका दिया, 'महारानी को तुम कह कर सम्बोधित कर रही हो! सामान्य शिष्टाचार भी नहीं जानती !'

सुदेष्णा ने अपने हाथ के संकेत से रक्षिका को रोक दिया, 'क्या आरोप है इस पर?'

'महारानी यह स्त्री मुख्य मार्ग पर डोलती फिर रही थी। इसने अपने आस-पास भीड़ एकत्रित कर रखी थी, और सैनिकों के अनेक बार कहने पर भी न यह मार्ग से हट रही थी और न ही मार्ग पर इस प्रकार डोलने और भीड़ एकत्रित करने का कोई कारण बता रही थी। सैनिकों की पूछताछ के उत्तर में इसने न केवल उन्हें कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया, उल्टे उनसे झगड़ा किया। एक-आध का तो मुँह ही नोंच लिया।'

'मैंने तो मुँह ही नोंचा है, यदि मेरे पति आस-पास होते तो उन सैनिकों में से अनेक की हत्या अवश्यंभावी थी।' वह स्त्री बोली, 'क्या मत्स्यराज इसी प्रकार का शासन करते हैं, जिसमें संकट में पड़ी किसी अकेली स्त्री को देख कर राज्य के सैनिक उसे गणिका मान कर उसका अपमान करने लगते हैं, और यदि वह स्त्री आत्मरक्षा में उनका प्रतिरोध करे तो वह बन्दी कर ली जाती है? संसार के किसी सभ्य समाज में ऐसा नहीं होता। यहाँ धर्मात्मा राजा मत्स्यराज का शासन है अथवा किसी राक्षस का?'

'शांत हो जाओ।' सुदेष्णा ने कहा, 'यहाँ कोई तुम्हारे साथ अन्याय नहीं करेगा।'

'अन्याय नहीं करेगा, किंतु दुर्व्यवहार तो करेगा ही।' वह स्त्री बोली, 'जब से आपके राज्य में आई हूँ, मेरे साथ यही हो रहा है।'

'नहीं! अब तुम्हारे साथ कोई दुर्व्यवहार भी नहीं करेगा।' रानी ने कहा, 'तुम बताओ कि तुम कौन हो?'

'कौन हूँ? सैरंध्री हूँ। महारानी द्रौपदी मुझे मालिनी कह कर पुकारा करती थीं।' स्त्री ने कहा।

'महारानी द्रौपदी !' रानी सुदेष्णा ने कुछ आश्चर्य से पूछा, 'उनसे तुम्हारा क्या सम्बंध है?'

'सम्बंध क्या होना है। मैं उनकी सेवा में थी।' स्त्री ने कुछ उद्दंडता से कहा, और फिर धीरे से जोड़ दिया, 'मैं कुछ समय तक श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामा की सेवा में भी रही हूँ।'

'तो फिर अब यहाँ क्या करती डोल रही हो?' रानी ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा, 'नाम तो इतने बड़-बड़ ले रही हो, और यहाँ राजमार्ग पर तमाशा कर रही हो!'

'महाभाग पाण्डवों का राज्य छिन गया। वे लोग अज्ञातवास के लिए चले गये। महारानी द्रौपदी उनके साथ अज्ञात स्थान को चली गईं, तो मैं अब क्या करूँ? आप ही बता दें कि वे लोग कहाँ हैं तो मैं उन्हीं के पास चली जाऊँ। सेवक की यही तो कठिनाई है। स्वामी पर संकट आए, तो सवक अपने आप ही मारा जाता है।'

'भौंकती बहुत हो।' एक रक्षिका उसकी ओर बढ़ी।

'पर तुम्हारे समान सबको काटती तो नहीं।'

'बहुत ठीक कहा।' सुदेष्णा हँस पड़ी। उसने अपने संकेत से आगे बढ़ती रक्षिकाओं को वहीं रोक दिया और कोमल स्वर में सैरंध्री से पूछा, 'घर कहाँ है तुम्हारा? यहाँ किसी सम्बन्धी के पास आई हो?'

मालिनी उदास हो गई। कुछ देर के पश्चात उसने अपने नयन उठा कर रानी की ओर कुछ इस प्रकार देखा, जैसे कहना चाह रही हो कि मुझसे यह सब मत पूछो। फिर स्वयं ही धीरे से बोली, 'नहीं! यहाँ मेरा कोई सम्बंधी नहीं है। महारानी! मुझसे मेरे घर-द्वार का पता और मेरे पति का नाम इत्यादि न पूछें।'

रानी की उत्सुकता जाग उठी थी....जिनकी सेवा की उनका नाम-पता तो बिना पूछे बता दिया और अपने विषय में कुछ बताना ही नहीं चाहती....

'विवाहिता हो अथवा अपने वियुक्त प्रेमी की खोज में यहाँ-वहाँ भटक रही हो?' रानी ने पूछा।

सैरंध्री ने पूरी खुली आँखों से रानी की ओर देखा, 'विवाहिता हूँ। मेरे पति किसी विपत्ति में फँस कर विदेश गए हैं, और उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठा कर मेरे श्वसुर ने मुझे घर से निकाल दिया है। अपने पति के लौटने तक मैं सर्वथा निराश्रित हूँ। उनके आने तक कहीं आश्रय खोज रही हूँ।'

'कौन हैं तुम्हारे पति?'

'किसी सैरंध्री के पति इतने प्रसिद्ध व्यक्ति तो नहीं हो सकते कि उनका नाम सुनते ही आप उन्हें पहचान जाएँगी, फिर भी मैं उनका नाम-पता नहीं बताना चाहती।' सैरंध्री बोली।

'क्यों?' रानी ने कुछ चकित भाव से पूछा, 'इसमें इतना गोपनीय क्या है? क्या गांधर्व विवाह किया है?'

'नहीं।' सैरंध्री पहली बार तनिक मुस्कराई।

रानी स्तब्ध रह गई : यह सैरंध्री तो जैसे कोई उल्का थी। उसकी दंत-पंक्ति देख कर किसी का भी हृदय पिघल कर बूँद-बूँद बह जाएगा, और यदि कहीं वह पुरुष-हृदय हुआ तो उसका स्पंदित होना ही कठिन था। सैरंध्री की मुस्कान थी या शरद पूर्णिमा की उजास ! ...रानी ने पहली बार उसके अधरों को ध्यान से देखा था....कामदेव का पुष्पधनुष ही साक्षात प्रकट हो गया था....प्रकट क्या हो गया था, सामने खड़ व्यक्ति के हृदय को अपनी प्रत्यंचा में फँसा कर अपनी ओर खींचने लगता था। न खड़ा रहने देता था न गिरने देता था। न मुक्त करता था, न मुक्त होने की कामना जगने देता था।....

'तो पति का नाम क्यों नहीं बताना चाहती?'

'उससे मेरे श्वसुर-कुल का अपयश फैलेगा।'

'जिस श्वसुर ने तुम्हें घर से निकाल दिया, उसके कुल के यश की चिंता क्यों है तुम्हें?' रानी ने जैसे प्रश्न नहीं पूछा था, सैरंध्री के व्यवहार के प्रति अपनी आपत्ति प्रकट की थी।

'मुझे चिंता अपने श्वसुर के कुल की नहीं, महारानी ! अपने पति के कुल की है।' सैरंध्री बोली, 'मुझे श्वसुर ने घर से निष्कासित किया है, पति ने नहीं। मेरे पति के लौटते ही मुझे सब कुछ मिल जाएगा, चाहे मेरे श्वसुर को ही घर से क्यों न निकलना पड़।'

'बहुत विचित्र है तेरा श्वसुर-कुल !' सुदेष्णा ने कहा, 'जहाँ पिता और पुत्र में इतना भेद है कि पुत्र के उपस्थित न होने पर श्वसुर अपनी पुत्रवधू पर कोप कर घर से निकाल देता है, और पुत्र लौटता है तो अपनी पत्नी को घर में प्रतिष्ठित करता है और अपने पिता को निष्कासित कर देता है!'

'कुछ ऐसा ही है महारानी !' सैरंध्री बोली।

'और यदि तेरे पति ने लौट कर भी अपने पिता का विरोध न किया तो?' रानी मुस्करा रही थी।

'तो मैं आपको उनका नाम-गाम, सब कुछ बता दूँगी।' सैरंध्री का आत्मविश्वास उसके शब्द-शब्द से टपक रहा था।

'क्या तुम प्रमाणित कर सकतो हो कि तुम सचमुच वैसी अच्छी सैरंध्री हो, जो सत्यभामा और द्रौपदी की सेवा में रह सके?' सुदेष्णा ने कहा, 'अपने बालों की तो तुमने वेणी तक नहीं कर रखी। कौन मानेगा कि तुम्हें केश-श्रृंगार की कला का कोई ज्ञान है !'

'मैं अपना केश-विन्यास केवल अपने पति के लिए करती हूँ, महारानी।' सैरंध्री बोली, 'वे लौट आएँगे और मुझसे प्रसन्न होंगे, तो उनको रिझाने के लिए वेणी भी करूँगी, और अपना श्रृंगार भी।' वह रानी के निकट चली आई, 'महारानी ! वैसे तो सैरंध्री का कार्य एक साधारण दासी भी कर लेती है, किंतु वास्तविक कला का पता तो तब लगता है, जब सैरंध्री का हाथ लगते ही आपका रूप दोगुना हो उठता है। आप स्वयं को दर्पण में निहार-निहार कर अपने ही रूप पर मुग्ध होने लगती हैं और सोचती हैं कि इतनी सुन्दर तो मैं पहले कभी नहीं थी।'

'बातें तो बहुत लुभावनी कर लेती हो।' रानी भी मुस्कराई, 'किंतु अपनी बात का प्रमाण दो तो जानूँ।'

'सैरंध्री ने जैसे चुनौती स्वीकार की, 'अनुमति हो तो अपनी कला का चमत्कार प्रस्तुत करूँ।'

'चल धानुके।' रानी ने अपनी एक दासी को सम्बोधित किया, 'बैठ जा सैरंध्री के सम्मुख। यह तुम्हारा केश-श्रृंगार करेगो।'

'क्षमा हो, महारानी !' सैरंध्री तत्काल बोली, 'मालिनी की कला दासियों के भाग्य में नहीं है। यदि मेरी कला का चमत्कार देखना हो तो या तो आप ही यह कष्ट करें, अथवा राजकुमारी को अनुमति दें।'

'रानी के मन में रोष जागा, यह सैरंध्री अपने आपको समझती क्या है....इसका अहकार क्या रानी सुदेष्णा की आज्ञा का तिरस्कार करेगा?....किंतु रानी ने स्वयं को संयत किया : किसी की कला को परखे बिना, उसके विषय में अपनी धारणाएँ नहीं बना लेनी चाहिए। कलाकार अत्यन्त संवेदनशील होता है। उसकी कला का अपमान हो तो वह राजाओं और राजाज्ञाओं तक का तिरस्कार कर सकता है।....

'अच्छा धानुके ! मेरी ही प्रसाधन सामग्री ले आ। मैं अपने ही केशों पर इसकी कला का चमत्कार देखूँगी।'

दासियाँ दौड़ पड़ीं और तत्काल सामग्री और उपकरण प्रस्तुत कर दिए गए।

रानी ने दर्पण अपने हाथ से नहीं छोड़ा और उनकी दृष्टि दर्पण से हट नहीं पाई।...एक क्षण में लग रहा होता था कि सैरंध्री इस कला में निपट अनाड़ो है। उसे इस कर्म का तनिक भी अभ्यास नहीं है; और अगले ही क्षण उसका हाथ रानी के केशों को कुछ इस प्रकार व्यवस्थित कर देता था कि लगता था, इस सैरंध्री से श्रेष्ठ सज्जाकर्मी इस संसार में नहीं है।....जैस-जैसे सैरंध्री अपने काम में तल्लीन होती जाती थी, रानी सुदेष्णा उसकी कला पर मुग्ध होती जाती थीं।....और जब सैरंध्री ने अपना काम समाप्त कर एक निरीक्षक दृष्टि उनके केशों पर डाली तो स्वयं रानी को लगा कि दर्पण में वे स्वयं नहीं कोई और ही रूपसी बैठी हुई थी। रानी चमत्कृत हो अपने दर्पण से पूछ रही थीं कि यदि यह उनका ही रूप था तो उस धृष्ट दर्पण ने उसे अब तक कहाँ छिपा रखा था? यदि कहीं यह सैरंध्री उनके यौवन में उनके पास आई होती तो कदाचित रानी सुदेष्णा संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के रूप में प्रसिद्ध हुई होती; किंतु अब इस ढलते वयस में वे उसका क्या लाभ उठा पाएँगी?..

और सहसा रानी का मन बदल गया....यौवन में उन्हें किसी सैरंध्री की क्या आवश्यकता थी? उनका अपना रूप ही पर्याप्त था, विराट के मन में झंझावात उठा देने के लिए....। सैरंध्री की आवश्यकता तो वस्तुतः अब ही थी, जब उनके ढलते रूप को किसी बैसाखी की आवश्यकता थी।....ठीक ही समय पर आई थी यह सैरंध्री। आज उन्हें उसकी सबस अधिक आवश्यकता थी, जब उनका रूप विराट को आकृष्ट करने में असफल होता प्रतीत हो रहा था।....वे कीचक से रुष्ट थे, और सुदेष्णा का रूप उन्हें यह भुला देने को बाध्य नहीं कर पा रहा था कि कीचक सुदेष्णा का भाई था। यह सुदेष्णा के रूप की असफलता ही तो थी।....और अब उन्हें मिल गई है यह सैरंध्री। इस रूप में तो वे कदाचित उत्तरा से भी अधिक आकर्षक दीख रही हैं।....उत्तरा में उसके वयस का आकर्षण तो है, किंतु इस समय कोई उन्हें देखे तो वह मानने को प्रस्तुत नहीं होता कि वे उत्तरा की जननी हैं। अधिक से अधिक तो कोई यही कह सकता है कि वे उसकी भगिनी हैं।....

'महारानी, यदि आप इस केश-सज्जा के साथ अपने कानों में कर्णफूलों के स्थान पर कर्णवलय धारण कर लें तो आपका वयस कम से कम पाँच वर्ष और भी कम हो जाएगा।'

सुदेष्णा ने सैरंध्री की बात सुनी, उस पर विचार भी किया; किंतु उससे सहमत नहीं हो सकीं। वे रानी हैं सैरंध्री नहीं, किंतु प्रसाधन-विद्या का कुछ ज्ञान उनको भी है। सैरंध्री की यह बात उनको उचित प्रतीत नहीं हो रही थी; परंतु प्रयोग करने में हानि ही क्या थी ! यदि सैरंध्री का कथन असत्य प्रमाणित हो गया, तो उसका अंहकार खंडित होगा और सत्य निकला तो रानी का रूप और निखर आएगा।'....

रानी ने अपनी प्रसाधिका की ओर देखा, 'कर्णवलय लाओ।'

महारानी ! जब मँगवाने ही लगी हैं तो एक पदमवर्णा साड़ो भी मँगवा लें और उन्हें धारण कर अपने रूप का परीक्षण महाराज पर करके देखें।' सैरंध्री बोली।

रानी ने उसकी ओर जो दृष्टि डाली उसमें हल्की-सी वर्जना थी कि वह कहीं मर्यादा का अतिक्रमण कर रही है; किंतु प्रसाधिका को मना नहीं किया। कहा, 'ले आओ।'

सैरंध्री ने उस बार रानी के हाथ में दर्पण नहीं रहने दिया। दर्पण देखने का अवकाश रानी को तब ही दिया, जब सैरंध्री अपना पूर्ण संतोष कर चुकी।

दर्पण देख कर सुदेष्णा चकित रह गई : वस्तुतः यह थी रानी सुदेष्णा; और आज तक उनकी प्रसाधिकाओं ने उन्हें क्या बना रखा था ! क्या रानी अपनी उन प्रसाधिकाओं को अपना रूप विकृत करने के ही पारिश्रमिक देती रही है? वे प्रसाधिकाएँ उनके सौन्दर्य को विकसित और अनावृत करने के स्थान पर तिरस्कृत और आवृत करती रहीं और रानी से प्रशंसा भी पाती रहीं तथा पुरस्कार भी। किंतु अब और नहीं। रानी ने अपना वास्तविक रूप देख लिया था। आज रानी की इच्छा हो रही थी कि वे अपनी उन पुरानी प्रसाधिकाओं को इतने दिनों तक सुदेष्णा को कुरूप बनाए रखने के अपराध में आजीवन कारावास दे दें। पता नहीं किस माया से वे आज तक उस कला की विशेषज्ञ मानी जाती रहीं, जिसका उनको कण-मात्र भी ज्ञान नहीं है ! आज भी यदि यह सैरंध्री न आई होती तो न वे अपने रूप को ही देख पातीं, न प्रसाधन-कला के चमत्कार को।....

रानी अपने मन के द्वंद्व को समझ नहीं पा रही थीं : इस समय उनकी उत्कट इच्छा क्या थी-अपनी पुरानी प्रसाधिकाओं को कारागार में डालना, अथवा इस नई सैरंध्री को अपने श्रृंगार के लिए अपनी बंदिनी बना लेना? यदि कहीं यह सैरंध्री उनके पास न टिकी और अन्यत्र चली गई तो रानी सुदेष्णा तो फिर से उन पुरानी प्रसाधिकाओं के कुरुचिपूर्ण श्रृंगार की ही आश्रित रहने को बाध्य हो जाएँगी। इसलिए इस सैरंध्री को किसी प्रकार आजीवन यहीं रोक रखने की कोई व्यवस्था अधिक आवश्यक थी....किंतु यदि वह सहमत न हुई तो? क्या रानी उसे सहज ही छोड़ देंगी? नहीं। शायद यह उनके लिए सम्भव नहीं होगा। वे इस सैरंध्री को नहीं छोड़ सकतीं। किसी भी प्रकार नहीं। सैरंध्री को यहाँ रहना ही होगा। अपनी इच्छा से रहे तो, रानी की आज्ञा से रहे तो। रहना तो उसे पड़गा ही। सैरंध्री यहाँ रहेगी तो उसकी उपस्थिति मात्र से ही सुदेष्णा की ये अज्ञानी और फूहड़ प्रसाधिकाए भी बहुत कुछ सीख जाएँगी।....

'पर यदि सैरंध्री यहाँ न रुकी, उसने जाने की हठ की?' सुदेष्णा के हृदय से एक आशंकित स्वर उठा।

....और तभी रानी की बुद्धि ने उस आशंका को सुला दिया, 'तो उसे बता देना पड़गा कि सुदेष्णा भी कोई साधारण स्त्री नहीं है, वह भी कीचक की बहन है।....'

'अच्छा! अब तुम लोग जाओ।' रानी ने अपनी दासियों से कहा, 'तुम यहीं ठहरो सैरंध्री! मुझे तुमसे कुछ कहना है।'

सैरंध्री मन ही मन मुस्कराई : मैं जानती थी सुदेष्णा! कि यही होगा; किंतु प्रकटतः भय प्रदर्शित करती हुई बोली, 'मुझसे कोई अपराध हो गया, महारानी?'

दासियों के जाने तक रानी ने कुछ नहीं कहा, किंतु उनके जाने के पश्चात धीरे से बोलीं, 'तुमने ऐसा क्यों समझा, सैरंध्री?'

सैरंध्री ने कोई उत्तर नहीं दिया, बस सिर झुकाए चुपचाप खड़ी रही।

'नहीं बताना चाहतीं?'

सैरंध्री ने अस्वीकृति म अपना सिर हिला दिया।

'अच्छा मत बताओ।' रानी हँस पड़ी, 'यह तो बताओ कि तुम अपने पति के लौटने तक किस प्रकार का आश्रय ढूँढ रही हो?'

'आश्रय किस प्रकार का हो सकता है, महारानी!' सैरंध्री बोली, 'मैं पापपूर्ण जीवन व्यतीत करना नहीं चाहती। मैं भिक्षा पर निर्भर रहना नहीं चाहती। प्रभु ने मुझे सक्षम शरीर दिया है और मेरे हाथों में कला दी है। सैरंध्री का कार्य करूँगी और उसके प्रतिदान में आश्रय चाहूँगी।'

'जो भी आश्रय दे?'

'जो भी धर्मपूर्वक आश्रय दे।'

'क्या मेरे पास रहना तुम्हे प्रियकर होगा?' रानी ने आतुरतापूर्वक पूछा।

रानी ने पूछ तो लिया, किंतु तत्काल ही उनके मन में जैसे उनचासों पवन हरहरा उठे। धरती के नीचे मानों शेषनाग का फन डोलने लगा।....वे क्या कर रही हैं? इस स्त्री को अपने घर में आश्रय देना चाहती हैं, जिसे देखते ही राजा विराट अपने सम्पूर्ण चित्त से उसमें आसक्त हो जाएँगे। इस दिव्य रूप को एक बार देख लेने के पश्चात वे पलट कर सुदेष्णा की ओर देखेंगे भी? ...वे ऊपर उठने के लिए वृक्ष पर चढ़ना चाहती हैं अथवा गिर कर आत्महत्या करने के लिए? वे क्या मादा केंकड़ के समान गर्भ धारण करना चाहती हैं कि प्रसव के होते ही उनकी मृत्यु हो जाए? वे इस रूप की ज्वाला को अपने घर में रखना चाहती हैं, जिसकी उपस्थिति मात्र से उनके घर में आग लग सकती है?....

किंतु अपने जिस दैवी रूप को वे आज अपने दर्पण में देख रही थीं, वे उसे खोना नहीं चाहती थीं। उस रूप के रहते राजा विराट को मुग्ध करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।....और फिर कीचक था वहाँ। राजा विराट कीचक की इच्छा के विरुद्ध तो जा ही नहीं सकते थे।....

'सोच कर तो मैं यही आई थी, महारानी! किंतु यहाँ के लोगों का विचित्र व्यवहार और सैनिकों का दुर्व्यवहार देख कर मेरा मन कुछ डर-सा गया है। जिस राज्य में अकेली नारी की रक्षा नहीं होती, मानना चाहिए कि वहाँ धर्म नहीं है। वहाँ मैं कैसे रह सकती हूँ!'

सुदेष्णा ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया : क्या उत्तर देतीं? क्या वे नहीं जानतीं कि विराटनगर के सैनिक कितने उत्पाती हो गये थ। उन्हें अपने बल और अधिकार का अहंकार हो गया था, और राजा थे कि इच्छा होने पर भी उनको अनुशासित नहीं कर पा रहे थे। कीचक पर उनका कोई वश नहीं था और सारी सेना कीचक के आधीन थी। सैनिक कीचक का ही भय मानते थे और उसी की आज्ञा के अनुचर थे।....कीचक ने सेना को, राजा की इच्छा के विरुद्ध अपने वश में रखने की यही युक्ति अपनाई थी। वह सैनिकों के विरुद्ध कुछ नहीं सुनता था। और न ही स्वयं उनको किसी प्रकार का दंड देता था। अब तो सैनिकों को मनमानी करने का अभ्यास ही हो गया था। पिछली बार राजा ने कीचक के एक सैनिक को अपने अंगरक्षकों के द्वारा बंदी बनाया था तो सैनिकों ने सामूहिक रूप से राजप्रासाद को घेर लिया था। सब जानते थे कि सेना के बिना शासन नहीं हो सकता और सेना कीचक की आज्ञा में थी। कौन नहीं जानता कि बकासुर के समान ही राजा की सहायता के नाम पर कीचक विराटनगर की प्रजा को भा रहा था।....कई बार सोचा था राजा ने सैनिकों को अपने पक्ष में करने के लिए, वे भी सैनिकों को ऐसी छूट दे दे, जैसी कीचक देता है, किंतु वे वैसा नहीं कर सकते थे। वे देश के राजा थे, मात्र सेनापति नहीं। उन्हें अपनी सम्पूर्ण प्रजा का पालन करना

था, केवल सेना का नहीं। वे अपनी प्रजा को पीड़ित कर अपनी सेना को प्रसन्न नहीं कर सकते थे। कीचक मात्र सेनापति था, वह केवल युद्धों और सेनाओं के विषय में सोचता था। उसके लिए प्रजा का कोई अस्तित्व नहीं था। यद्यपि सेना प्रजा के लिए ही होती है, किंतु वह प्रजा के प्रति अपना कोई दायित्व नहीं मानता था। उसके लिए सेना ही सब कुछ थी। इसलिए वह जिस प्रकार सेना को प्रसन्न कर सकता था, राजा नहीं कर सकते थे।

'पुरुषों के राज्य में स्त्री सदा इसी प्रकार असुरक्षित रहती है सैरंध्री !' अन्ततः रानी धीरे से बोलीं, 'इसके लिए हम क्या कर सकती हैं ! पर, तुम यहाँ मेरे पास रहोगी, तो तुम्हें कोई कुछ नहीं कहेगा।'

सैरंध्री एक बार फिर मन ही मन मुस्कराई : रानी ने बहुत सोच-विचार कर न्याय और अन्याय का नहीं, पुरुषों और स्त्रियों का विषय आरम्भ कर दिया था। रानी चतुर राजनीतिज्ञ थीं।

'पुरुषों के राज्य में स्त्रियाँ सुरक्षित नहीं हैं: किंतु यहाँ, आपके पास रह कर मैं सुरक्षित हो जाऊँगी। आपके पास रहने से क्या राज्य स्त्रियों का हो जाएगा?' सैरंध्री ने अबोध भाव से पूछा।

रानी क्षणभर के लिए हतप्रभ रह गईं। उन्हें सैरंध्री से इस प्रकार के प्रश्न की तनिक भी अपेक्षा नहीं थी। उसने इतना उद्दंड प्रश्न इतने अबोध भाव से किया था कि रानी न उसे दंडित कर सकती थीं और न ही वे उसे इस अपराध के लिए क्षमा करना चाहती थीं.... दंडित करतीं तो उनका श्रृंगार कौन करता, और क्षमा कर देतीं तो सैरंध्री और भी ऐसे प्रश्न कर उनका वक्ष छलनी न करती रहती। एक ही मार्ग था कि वे मान लेतीं कि वह एक अबोध प्रश्न था, जिसका पूछनेवाला भी नहीं समझ रहा था कि वह क्या पूछ रहा है....

'नहीं ! राज्य तो स्त्रियों का नहीं हो जाएगा, किंतु यहाँ मैं तुम्हारी रक्षा कर सकती हूँ।'

'जब यहाँ कर सकती हैं, तो बाहर, वहाँ मार्ग पर, पथ पर क्यों नहीं? सारे राज्य में क्यों नहीं? मेरी ही क्यों, किसी भी स्त्री की रक्षा आप क्यों नहीं कर सकतीं? रानी तो पूरे राज्य की रानी होती है, केवल अपने प्रासाद की नहीं। और फिर स्त्रियों की ही क्यों, पुरुषों की रक्षा क्यों नहीं? रक्षा की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है।'

'पुरुष समर्थ है, इसलिए वह अपनी रक्षा स्वयं कर सकता है।' रानी बोली।

'हाँ। वह पुरुष समर्थ ही होता है, जिसकी हत्या हो जाती है।' सैरंध्री बोली, 'और वह अपने हत्यारे का कुछ नहीं कर सकता।'

सुदेष्णा ने सैरंध्री को इस प्रकार देखा, जैसे उसे पहली बार देख रही हो। वे शायद उसे पहली बार ही देख रही थीं। इससे पहले उन्होंने जिस सैरंध्री को देखा था, उसमें केवल रूप ही था। यह सैरंध्री, जिसे वे इस समय देख रहीं थीं, उसमें बुद्धि भी थी। वह तर्क कर सकती थी, निष्कर्ष निकाल सकती थी, तुलना कर सकती थी। प्रतिभायुक्त होने से उसके सौन्दर्य में जैसे और भी निखार आ गया था।.... पर वे इस सैरंध्री की कला को तो अपने निकट रखना चाहती थीं, जो उनके रूप का श्रृंगार कर सके, उसके उस रूप को अपने निकट नहीं देखना चाहती थीं, जो प्रत्येक पुरुष की दृष्टि को रानी सुदेष्णा के मुखमंडल से हटा कर अपनी ओर खींच ले। वे उसकी उस बुद्धि को तो अपनी सेवा में देखना चाहती थीं, जो उनके सौन्दर्यवर्द्धन के लिए युक्तियाँ सोच सके, उसकी उस तर्कशक्ति को अपने निकट देखना नहीं चाहती थीं, जो उनकी अपनी उक्तियों के आत्मविरोधी तत्वों को रेखांकित कर उनकी दृष्टि के सम्मुख रख दे।... पर वे क्या कर सकती थीं, इस सैरंध्री की कला इन अँगुलियों के बिना उन्हें नहीं मिल सकती थी, और ये अँगुलियाँ उस सुन्दर और आकर्षक शरीर के बिना उपलब्ध नहीं हो सकती थीं। और यह शरीर यहाँ रहेगा तो उसमें निवास करने वाली यह बुद्धि भी यहीं रहेगी....

'ठीक कहती हो, सरंध्री !' सुदेष्णा ने उत्तर दिया, 'रानी तो पूरे राज्य की ही होती है, और वह मैं हूँ। स्थिति में अंतर केवल इतना है कि प्रासाद में हमारे वे अंगरक्षक हैं, जो महाराज के प्रति निष्ठावान हैं, और मार्गों और पथों पर वे सैनिक हैं, जो सेनापति की वाहिनियों के अंग हैं और वे कवल सेनापति का भय मानते हैं। जब वे राजा का ही भय नहीं मानते, तो रानी की आज्ञा क्या मानेंगे !'

इस बार सैरंध्री चल कर रानी के निकट आ गई। उनके पास भूमि पर बैठ गई और धीरे से बोली, 'महारानी ! राज्य तो यहाँ भी महाराज का है, और पूरे मत्स्यदेश में भी। यहाँ भी उनके हो

सैनिक हैं और पूरे देश म भी। फिर भी आप यहीं मेरी रक्षा कर सकती हैं, अन्यत्र नहीं। क्यों? सैनिक यहाँ भी राजा के हैं और पूरे मत्स्यदेश में भी। राजा भी पुरुष हैं, आपके सेनापति भी और सैनिक भी। फिर भी आप यहीं मेरी रक्षा कर सकती हैं, विराटनगर के मार्गों पर नहीं, पथ-वीथियों में नहीं। क्यों?'

'कहा न ! यहाँ हमारे निष्ठावान सैनिक हैं।'

'यदि ये सैनिक भी सेनापति के प्रति निष्ठावान होते तो?'

'तो कदाचित मैं यहाँ भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर पाती।' रानी ने स्वीकार किया।

'रहते तो तब भी पुरुष ही, आज भी वे पुरुष ही हैं।' सैरंध्री बोली।

'पुरुष नहीं रहते तो क्या वृहन्नला हो जाते!' रानी को जैसे अपने ही वाक्य में रस मिला।

सैरंध्री को रानी का यह परिहास अच्छा नहीं लगा। बोली, 'यह कौन है, महारानी?'

'दो-तीन दिन पूर्व ही हमारे यहाँ एक नपुंसक आया है।'

'महारानी मेरे कहे से रुष्ट न हों तो कहूँ कि आप उन पर तो कटाक्ष करती नहीं जो पुरुष होकर भी क्लीव बने हुए हैं। वृहन्नला तो ईश्वर के आदेश का पालन कर रहा है।'

सैरंध्री का तेज रानी पर भारी पड़ रहा था, किंतु कह तो वह ठीक ही रही थी।

सैरंध्री ने भी रानी की अप्रसन्नता भाँप ली। बोलीं 'महारानी, मैं तो केवल एक बात कहना चाह रही हूँ कि समाज इस प्रकार बँट कर नहीं चल सकता कि पुरुषों का राज्य है तो स्त्री असुरक्षित रहे और स्त्रियों का राज्य आये तो पुरुष स्वयं को असुरक्षित पाए। प्रश्न पुरुषों और स्त्रियों का नहीं है। न ही प्रकृति की ओर से उनमें परस्पर किसी प्रकार का विरोध है। प्रकृति ने तो उन्हें एक प्रकार से एक-दूसरे का पूरक बनाया है। यदि वे एक-दूसरे को अपना शत्रु मानने लगें, तो कोई पत्नी अपने पति, और कोई पति अपनी पत्नी की निकटता में सुरक्षित नहीं रहेगा।'

'तो तुम समझती हो कि स्त्री अपने पति की ओर से सुरक्षित है?'

'न होती तो उसका भोजन पकाते हुए उसमें विष डालकर उसकी हत्या कर डालती।'

'चलो मान लेती हूँ कि स्त्री अपने पति के साथ अथवा उसके अधीन तो सुरक्षित है, किंतु वह पर-पुरुष से तो सुरक्षित नहीं है।'

'प्रश्न स्त्री और पुरुष का तो है ही नहीं, महारानी ! प्रश्न तो न्यायी और अन्यायी का है। जिसके निकट पर-स्त्री सुरक्षित नहीं है, उसकी रक्षा में तो अपनी पत्नी भी सुरक्षित नहीं है। जो स्त्री, पर-पुरुष को लूट सकती है, उसकी निकटता में उसके अपने पति का धन भी सुरक्षित नहीं है। मैं तो सैनिकों को भी अच्छा और बुरा नहीं कहना चाहती। वे ही सैनिक किसी न्यायी व्यक्ति के अधीन कार्य करते हैं तो प्रजा के रक्षक बन जाते हैं और जब वे ही किसी दुष्ट की आज्ञा के अधीन होते हैं तो राक्षस हो जाते हैं।'

'कहती तो तुम ठीक हो, सैरंध्री।' रानी ने कहा, 'मुझे लगता है कि हमारे सेनापति ने ही अपना धर्म त्याग दिया है।'

रानी कह तो गईं, किंतु शब्दों के मुख से निकलते ही, वे सजग हो गईं। वे अपने भाई के विषय में क्या कह गईं! उसी के कारण तो वे राजा के सम्मुख भी झुकने को बाध्य नहीं हैं। उसी के कारण तो उनका यह वर्चस्व बना हुआ है, और वे उसी के विषय में कह रही हैं, कि वह धर्म को त्याग चुका है।....

पर अपने मन में कहीं वे यह भी मानती थी कि कीचक अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर रहा है।....किंतु एक सैरंध्री के सम्मुख यह स्वीकार करना?....यह तो रानी को शोभा नहीं देता....

'जिस राज्य का सेनापति धर्म त्याग दे और राजा उसके सम्मुख असहाय हो जाए, वहाँ तो न राजा सुरक्षित है, न रानी! प्रजा का तो कहना हो क्या!'

सुदेष्णा सैरंध्री से तनिक भी सहमत नहीं थीं। वे यह कैसे मान लेतीं कि वे अपने भाई के अधिकार-क्षेत्र में सुरक्षित नहीं हैं। हाँ! वे उसके सैनिकों से किसी की रक्षा नहीं कर पातीं, यह बात और है। पर ये सब उनकी अपनी पारिवारिक बातें थीं। इनके विषय में वे एक साधारण सैरंध्री से चर्चा करना नहीं चाहती थीं।

'तो फिर मेरी रक्षा कौन करेगा, महारानी?' सैरंध्री पूछ रही थी।

'मेरे अंगरक्षक तुम्हारी रक्षा करेंगे।' महारानी ने उत्तर दिया।

'नहीं रानी! रक्षा तो अंग-रक्षक भी नहीं करते। स्त्री हो या पुरुष, व्यक्ति हो या समाज। रक्षा तो बस धर्म ही करता है। इसीलिए कहा जाता है कि धर्म का तिरस्कार नहीं होना चाहिए, न राजा के द्वारा, न सेनापति के द्वारा। मेरी रक्षा भी मेरा धर्म ही करेगा; इसलिए आपसे मुझे यह वरदान चाहिए कि मुझे अपने धर्म पर चलने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।'

'अवश्य।' रानी उत्साहपूर्वक बोलीं।

'उसके लिए मुझे आपका आश्वासन चाहिए।'

'कैसा आश्वासन, सैरंध्री?'

'आप मुझे अपने सिवाय किसी और की सेवा में नहीं भेजगी और मैं अपनी इच्छानुसार अवगुंठनवती रह सकूँगी।' सैरंध्री बोली, 'मेरी कला का सम्मान होगा, अतः मुझे एक कलाकार की प्रतिष्ठा मिलेगी, दासी का स्थान नहीं। न मुझे किसी का उच्छिष्ट भोजन छूना पड़गा, न किसी के चरण।'

रानी को लगा, सैरंध्री की इन दो बातों में कुछ भी अनुचित नहीं है। यदि वह यह आश्वासन स्वयं ही न माँगती तो भी रानी उसे अपनी निजी सैरंध्री ही नियुक्त करना चाहती थीं। वे नहीं चाहती थीं कि किसी और का भी उतना सुंदर श्रृंगार हो, जितना रानी सुदेष्णा का। अवगुंठनवाला वचन भी तो ठीक ही तो है कि उसका अदभुत रूप सबके सामने नहीं आना चाहिए।....इस रूप को देख कर तो किसी भी पुरुष का मन अनियंत्रित हो सकता है। सैरंध्री तो सैरंध्री, स्वयं रानी भी किसी का विश्वास नहीं कर सकतीं। उन्हें तो सबसे अधिक आशंका स्वयं मत्स्यराज की ओर से ही थी। यदि राजा को ही सैरंध्री भा गई तो सुदेष्णा का आश्वासन क्या कर लेगा और सैरंध्री का धर्म ही क्या कर लेगा!..

रानी ने अपने सिर को एक झटका दिया। वे एक साधारण स्त्री के समान क्या सोचने लगीं। क्या विराट ने आज तक कभी पर-स्त्री के प्रति इस प्रकार की लिप्सा प्रकट की है?....

किंतु रानी का मन जैसे अपने ही तर्कों के विरुद्ध व्यूहबद्ध हो रहा था, 'नहीं! महाराज ने आज तक तो इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं दिखाई; किंतु आज तक उनके सामने इतनी रूपवती स्त्री भी तो नहीं आई। यह सैरंध्री क्या कोई साधारण स्त्री है?'

यदि सैरंध्री को अपने प्रासाद में अपने निकट रखने में इतना ही संकट था तो सुदेष्णा इस प्रकार का संकट मोल ही क्यों ले रही थीं? उन्हें उसी क्षण सैरंध्री को यहाँ से विदा कर देना चाहिए था....

पर नहीं ! सुदेष्णा के मन में एक रूपगर्विता नारी भी बैठी थी। वह यह विचार भी कैसे सहन कर सकती थीं कि उस सैरंध्री को यहाँ से चुपचाप विदा कर दिया जाए, जो उनके रूप को आज भी नवयौवनाओं के रूप से अधिक आकर्षक बना सकती थी। उसे विदा करने का अर्थ था, रानी सुदेष्णा के सौन्दर्य को विदा कर देना। सुदेष्णा के नारी सुलभ आकर्षण को समाप्त कर देना....सुदेष्णा अपने प्राण दे सकती थीं, किंत अपने रूप के प्रति यह मोह नहीं छोड़ सकती थीं....

'ठीक है सैरंध्री! मुझे तुम्हारी दोनों बातें स्वीकार हैं। तुम केवल मेरी सेवा में रहोगी, और जिस स्त्री अथवा पुरुष के सम्मुख तुम नहीं आना चाहोगी, उसके लिए तुम्हें कोई भी बाध्य नहीं करेगा। तुम न किसी के चरण छूओगी, न किसी का उच्छिष्ट भोजन!'

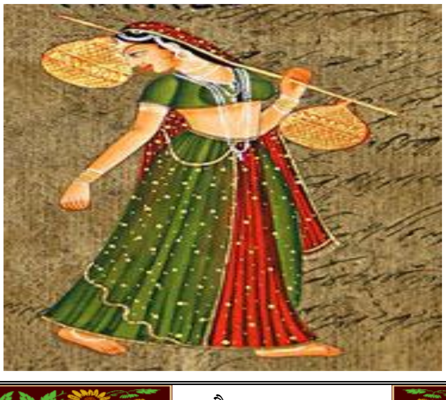

# प्राणपरिमल


## मनोरमा तिवारी
(राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त शिक्षाविद्)


तिमिर के निस्सीम पथ को
आज अंतर लाँघता है
दिव्य अर्चन के स्वरों के
साज मधुरिम साधता है.

चिर-प्रतीक्षित पुण्यमय क्षण
यह परम अनान्दकण है
किन अपरिचित बीथियों से
अलौकिक प्रिय झाँकता है?

अति मनोहर धरा जिस पर
कोटि इन्द्रासन निछावर
मोह के बन्धन निराले
कौन पग पर बाँधता है?

प्रकृति के अनुपम रसों से
युक्त जीवन राग रंजित
नियति निर्धारित क्षणों को
आयु के फल बाँटता है.

सहस्त्रदल के कमल पर
नित गूँजता संगीत मधुरिम
उस अनाहत नाद की ध्वनि
हृदयतल पर धारता है.

कर्म की अविराम गति से
क्यों नहीं विश्राम ले, उर
उस अरूपायत सुछबि पर
प्राण परिमल वारता है.

# पारिवारिक जीवन का आनन्द

**पद्मविभूषण लालकृष्ण आडवाणी**

**"विश्व को सही रास्ते पर लाने के लिए हमें पहले देश को सही रास्ते पर लाना होगा. देश को सही रास्ते पर लाने के लिए हमें पहले परिवार को सही रास्ते पर लाना होगा. और परिवार को सही रास्ते पर लाने के लिए हमें पहले अपने व्यक्तिगत जीवन को परिष्कृत करना होगा. इसके लिए सबसे पहले हमें अपने हृदयों को सही रास्ते पर लाना होगा." – कन्फ्यूशियस, चीनी दार्शनिक (५५१-४७९ ई.पू.)**

संघ में प्रचारक पद्धति कई तरह से अनूठी है. उदाहरण के लिए, एक प्रचारक कोई नौकरी या व्यवसाय नहीं कर सकता. उसे संघ द्वारा दिए जाने वाले अल्प मानदेय पर ही गुजारा करना होता है और आर्थिक मामलों में अत्यधिक ईमानदारी बरतनी पड़ती है. दूसरे, संघ सामान्यत: यह चाहता है कि उसके प्रचारक एक अविवाहित जीवन बिताएँ. इसके पीछे सोच यह है कि एक स्वयंसेवक, जिसने स्वेच्छा से प्रचारक बनना स्वीकार किया है, राष्ट्र की सेवा अविभाजित मनोयोग से कर सके. दूसरे शब्दों में उसका 'विवाह' राष्ट्र के लक्ष्यों और आदर्शों के साथ हो जाता है.

संघ के कई प्रेरणादायक आदर्श वाक्यों में से एक है, 'राष्ट्राय स्वाहा. इदं न मम, इदं राष्ट्राय.' इसका एक मुक्त अनुवाद होगा, 'मैं अपना सब कुछ राष्ट्र को अर्पित करता हूँ. यह सब कुछ मेरा नहीं, राष्ट्र का ही है.'

चौदह वर्ष की आयु में जब कराची में मैं संघ में शामिल हुआ था, तभी मैंने इस आदर्श वाक्य को अपना लिया था. समय बीतने के साथ और विशेष रूप से भारत के विभाजन के कारण सिंध छोड़ने के बाद इस भावना में मेरा विश्वास बढ़ता ही गया. इसलिए जब मैं राजस्थान में कार्यरत था और दिल्ली में आने के बाद भी मेरे मन में गम्भीरता से कभी विवाह का विचार नहीं आया था. और चूँकि मैं जनसंघ के कई पूर्णकालिक सदस्यों – जिनमें से कई संघ के प्रचारक भी थे – के साथ रहता और कार्य करता था, इसलिए बिना विवाह किए मैं स्वयं को अलग-सा महसूस नहीं करता था. परन्तु जब मैं 'ऑर्गेनाइज़र' में शामिल हुआ, आर्थिक रूप से स्वतंत्र हुआ और अपने निजी मकान में रहने लगा तो परिस्थितियाँ बदल गईं. मैं अब प्रचारक नहीं रह गया था.

सन् १९५७ में मेरी छोटी बहन शीला संतू भावनाणी से विवाह करके बम्बई में ही बस गई थी. उसी ने मुझसे आग्रह करना शुरू कर दिया कि मैं भी विवाह करके अपना घर बसाऊँ. वह मुझे बार-बार याद दिलाती थी कि मैं तीस वर्ष पार कर गया हूँ. धीरे-धीरे मुझे भी उसकी बात जँचने लगी. चूँकि मैंने अपने जीवन में कोई महिला मित्र नहीं बनाई थी, अत: उसका यह सुझाव मान लिया कि वह मेरे लिए एक उपयुक्त जीवनसाथी ढूँढ देगी.

सन् १९६५ के आरम्भ में जनसंघ के एक सम्मलेन में भाग लेने के लिए मैं आंध्र प्रदेश के विजयवाड़ा शहर में गया था. उस समय मैं पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का एक सदस्य था. प्रसंगवश, यह बता दूँ कि पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने अपना दार्शनिक प्रबन्ध 'एकात्म मानववाद' पार्टी की कार्यकारिणी के समक्ष पहली बार यहीं पर प्रस्तुत किया था. वापसी में मैं कुछ दिनों के लिए बम्बई रुका. शीला ने कमला जगत्याणी, जो मेरी ही तरह कराची से विस्थापित एक सिन्धी कन्या थी, से मेरी मुलाकात तय कर दी थी. मैं उस मुलाकात के लिए तुरंत तैयार हो गया. कमला के साथ उस दिन की संक्षिप्त मुलाकात हमारे जीवन-पर्यंत साथ का प्रारम्भ थी.

कमला के परिवार वाले मेरे काम के बारे में इतना ही जानते थे कि मैं एक पत्रकार और राजनीतिक कार्यकर्ता भी था. दोनों परिवार वाले जब एक-दूसरे से मिले, तो उसी समय एक व्यक्ति उस दिन के 'द टाइम्स ऑफ़ इंडिया' की एक प्रति ले आए और मुझसे पूछने लगे, 'इस अख़बार में आपका नाम छपा है?' विजयवाड़ा से समाचार देते हुए 'टाइम्स' ने जनसंघ में संविधान के संशोधन करने के उद्देश्य से पार्टी द्वारा गठित चार सदस्यीय दल के एक सदस्य के रूप में मेरे नाम का उल्लेख किया था. जब मैंने इसका उत्तर 'हाँ' में दिया तो मेरे आस-पास खड़े लोगों के चेहरों पर आश्चर्य का भाव दिखाई दिया. उन्होंने शायद सोचा होगा कि, 'ऐसा लगता है कि एक राष्ट्रीय पार्टी में इस आदमी की कुछ हैसियत है.'

२५ फरवरी १९६५ को बम्बई में मैं और कमला विवाह-सूत्र में बँध गए. वैदिक रीति से सम्पन्न किया गया वह एक सादगीपूर्ण आयोजन था. स्वागत-समारोह चर्च गेट के पास के.सी. कॉलेज, जो दो महान् सिंधी लोकोपकारियों, प्रिंसिपल के.एम. कुंदनाणी और बैरिस्टर होतचंद आडवाणी द्वारा स्थापित किया गया था, की छत पर आयोजित किया गया था. कमला कराची के एक अमीर और प्रतिष्ठित परिवार से सम्बन्ध रखती थीं. मेरे परिवार से उलट उनका परिवार बड़ा था – उनके चार भाई और एक बहन थी. विभाजन के बाद उनके परिवार को अत्यंत दु:खदायी परिस्थितियों में भारत आना पड़ा और जब वे बम्बई पहुँचे तो उनके पास कुछ नहीं बचा था. कमला के पिता प्रेमचंद जगत्याणी एक पुण्यात्मा थे, जिन्होंने सरकार से अपनी खोई सम्पत्ति के लिए कोई मुआवज़ा नहीं लिया. सन् १९५२ में उनका स्वर्गवास हो गया था, उसके बाद कमला ने अपने परिवार के भरण-पोषण का दायित्व अपने कंधों पर लिया. पहले उन्होंने आठ वर्ष तक दिल्ली के गोल डाकखाना के जनरल पोस्ट ऑफिस में, और फिर बम्बई के वी.टी. स्टेशन के पास में नौ वर्ष तक कार्य किया.

इस प्रकार, मेरी ही तरह कमला भी जीवन की कठोरताओं से परिचित थीं. इसीलिए यह सम्भव हो सका कि कम आय में भी दिल्ली में हम सुखपूर्वक रह सके. हमारे विवाह के बाद के कुछ महीनों तक मुझे अपने कपडे धोते देखकर उन्हें आश्चर्य होता था. वह इसे पसंद नहीं करती थीं. 'आप ऐसा क्यों करते हैं?' उन्होंने मुझसे पूछा. मैंने कहा, 'मैं जब से राजस्थान में एक प्रचारक के रूप में काम करता था, तभी से यह कर रहा हूँ.'

'नहीं, अब मैं आपको यह सब नहीं करने दूँगी आपके कपड़े अब मैं धोऊँगी.' उन्होंने कहा और मुझे वह काम छोड़ना पड़ा.

जीवन ईश्वर के उपहारों से भरपूर है. जीवन के सबसे बहुमूल्य उपहारों में से एक है संतान-सुख. कमला और मेरी पहली संतान जयंत का जन्म १८ फरवरी, १९६६ को हुआ. ६ सितम्बर १९६७ को जब प्रतिभा का जन्म हुआ तो हमारी ख़ुशी दोगुनी हो गई. दोनों का जन्म बम्बई में हुआ. प्रतिभा कुछ वर्षों तक अपनी नानी के साथ रही और अपने आरम्भिक संस्कार उस संत रूपी महिला से ग्रहण किए.

अपने बच्चों को बड़े होते हुए देखना मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता की बात थी. मुझे याद है कि एक बच्चे के रूप में जयंत हर शाम मुझसे कहता था, 'मैं उसे 'पानी में बत्ती' दिखाने के लिए ले जाऊँ. यह दिल्ली के इण्डिया गेट के प्रकाशमयी फव्वारों का वर्णन करता था. जल्द ही जयंत और प्रतिभा को हुमायूँ रोड स्थित रघुवीर सिंह जूनियर मॉडर्न स्कूल में भर्ती कराया गया. और मैं उन्हें अपनी हरे रंग की फिएट कार में स्कूल छोड़ता था. मैं उनके गृहकार्य में उनकी मदद करता था और उनके खेल तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में शामिल होता था. आम तौर पर जयंत के क्रिकेट मैचों में और प्रतिभा के नृत्य-नाटकों एवं भाषणकला के कार्यक्रमों में.

फरवरी १९७७ में किसी समय प्रतिभा ने अपने स्कूल की प्रार्थना सभा में एक भाषण दिया था, जिसे मैं गर्व से स्मरण करता हूँ. जनवरी में आपातकाल समाप्त हुआ था और राजीनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया गया था. मैं उन्नीस महीने बंगलौर सेन्ट्रल जेल में रहने के बाद वापस दिल्ली आया था. प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को मजबूरन संसदीय चुनाव करने पड़े थे. जयप्रकाश नारायण के कुशल नेतृत्व में कई विपक्षी दलों ने एक साथ मिल कर एक मंच बनाया, जिसे 'जनता पार्टी' कहा गया. यह पार्टी भारत के दूसरे स्वाधनीता संघर्ष के एक नायक के रूप में उभरी. प्रतिभा तब केवल दस वर्ष की थी और उसने अपने भाषण में कहा था –

'मार्च में हमारा देश नई लोकसभा को चुनने जा रहा है. मुख्य मुकाबला काँग्रेस और जनता पार्टी के बीच होगा. जनता पार्टी का संक्षिप्त रूप जे.पी. है. इसकी स्थापना जयप्रकाश नारायण के प्रयासों से हुई है. उन्हें भी जे.पी. के नाम से जाना जाता है. मुझे यह उल्लेख करने की अनुमति दी जाए कि मेरे भाई का नाम जयंत है एवं मेरा प्रतिभा, इसलिए हम भी मिलकर 'जे.पी.' बनते हैं.'

अपने बच्चों पर मैंने कभी भी अपने विचार नहीं थोपे. मैंने उन्हें उनकी जन्मजात क्षमताओं को मुक्त रूप से विकसित होने दिया. हमारे परिवार का परिवेश ऐसा था कि देशभक्ति और अच्छे चरित्र के मौलिक गुण जयंत और प्रतिभा में बहुत छोटी आयु में ही आ गए थे. बच्चे बड़ों की अपेक्षा जल्दी सीखते हैं. वे अपने माता-पिता के व्यवहार और समाज के अन्य लोगों से बाहरी दुनिया की तुलना में अधिक सीखते हैं. लेबनानी कवि खलील जिब्रान द्वारा लिखी एक सुन्दर कविता है 'चिल्ड्रन' (बच्चे), जिसे मैं सभी माता-पिताओं को पढ़ने के लिए अनुशंसित करूँगा-

"आपके बच्चे आपके बच्चे नहीं हैं,
ये जीवन के स्वयं के प्रति चाह की बेटे और बेटियाँ हैं.
वे आपके माध्यम से आये हैं, पर आपके द्वारा नहीं आये हैं,
यद्यपि वे आपके साथ हैं, पर वे आपके नहीं हैं.
आप उन्हें अपना प्रेम दे सकते हैं पर अपने विचार नहीं,
उनके लिए उनके अपने विचार हैं.
आप उनके शरीर को घर में रख सकते हैं, लेकिन आत्मा को नहीं,
उनकी आत्मा कल के घर में निवास करती है,
जिसमें आप अपने सपनों में भी नहीं जा सकते,
आप उनके जैसे होने का प्रयास कर सकते हैं
लेकिन उन्हें अपने जैसा बनाने का प्रयास न करें.
क्योंकि जीवन पीछे नहीं चलता, न ही बीते कल से चिपका रहता है.

आप कमान हैं जिससे आपके बच्चे
जीवित तीर के रूप में छोड़े जा चुके हैं.
तीरंदाज़ ने अनंत पथ में उनके चिह्न देखे हैं
और उसने अपनी ताकत से आपको झुका दिया है,
जिससे उसके तीर स्फूर्ति से दूर जाएँ.
चलो, तीरंदाज़ के हाथों हमारे झुकने को अपनी ख़ुशी मानें,
चूँकि वह जितना उड़ते तीरों से प्रेम करता है,
वह उतना ही उस कमान को भी प्रेम करता है, जो स्थिर है.

एक कहावत है कि महिलाएँ आधे आकाश को अपने कंधों पर उठाये हुए हैं. मैं सोचता हूँ कि जहाँ तक भारतीय माताओं का सम्बन्ध है, यह एक अल्पोक्ति है. मेरे मामले में हमारा परिवार चलाने का पूरा श्रेय कमला को ही जाता है. बढती हुई राजनितिक ज़िम्मेदारियों और अक्सर देश के सभी भागों में घूमते रहने के कारण मैं अपने परिवार को पर्याप्त समय नहीं दे पाया. कुछ तो अपने स्वभाव के कारण और कुछ मेरी पृष्ठभूमि एक प्रचारक की होने के कारण पैसों से जुड़े मामलों में मैं नितांत अनभिज्ञ रहा हूँ. इससे कमला का कार्यभार और बढ़ गया. जैसे-जैसे वर्ष बीतते गए, मैं उनकी सहज साहसिकता, कड़ी मेहनत करने की लगभग असीमित क्षमता, परिवार के वित्तीय प्रबंधन पर उनकी पैनी दृष्टि और इन सबसे ऊपर मेरी और बच्चों की प्रेमपूर्ण देख-भाल से मैं बारम्बार चकित होता रहा हूँ. निस्संदेह, वही हमारे परिवार का मुख्य आधार रही हैं.

एक राजनितिक कार्यकर्ता का घर मुश्किल से ही शांत रह पाता है. हर दिन मिलने वालों का ताँता लगा रहता है. इस मामले में भी कमला सदा ही एक उत्साही मेज़बान रही हैं. प्रतिभा और मैं कमला को अन्नपूर्णा कहते हैं क्योंकि उन्हें अतिथियों को अपने हाथ से भोजन कराने में अपार प्रसन्नता होती है. संघ या जनसंघ के वरिष्ठ नेता अक्सर अनौपचारिक रूप से या किसी निश्चित कार्य से हमारे छोटे से घर में आते रहे हैं. निरपवाद रूप से उन्हें घर का वातावरण भावपूर्ण और सत्कारशील लगा है. उनमें से कई हमारे परिवार के सदस्य जैसे ही बन गए. दीनदयाल जी और अटल जी के अतिरिक्त इनमें दत्तोपंत ठेंगड़ी भी शामिल थे, जिन्होंने भारतीय मजदूर संघ की स्थापना की और इसे भारत की सबसे बड़ी ट्रेड यूनियन बनाया. राजेन्द्र शर्मा, जिन्होंने कई वर्षों तक पार्टी के संसदीय कार्यालय का संचालन किया, सुंदर सिंह भंडारी, राजस्थान के दिनों में मेरे पार्टी सहयोगी और एन.एम. (अप्पा) घटाटे, एक युवा वकील तथा पार्टी कार्यकर्ता एवं उनकी पत्नी शीला. अप्पा घटाटे १७वें विधि योग के उपाध्यक्ष रहे. नागपुर में उनके परिवार ने संघ कार्य में अपूर्व योगदान दिया. शीला ने कुछ वर्ष मेरे संसदीय कार्य में सहयोग किया. ये सभी मेरे लिए पारिवारिक सदस्यों के समान थे. ठेंगड़ी जी के साथ मैंने विशेष रूप से बहुत निकट के व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाए, फिर भी मैं राजनीति और राजनीतिक पार्टियों के सम्बन्ध में उनकी आलोचनात्मक धारणा से सहमत नहीं था. उन सभी ने हमेशा माहौल को जोशपूर्ण बनाया.

(आदरणीय एवं प्रिय आडवाणी जी व उनके **स्नेही** परिवार का आतिथ्य-सौभाग्य ठाकुर साहब व मुझे भी प्राप्त हुआ है। उनके परिवार की एक-दूसरे के प्रति व अतिथियों के प्रति आत्मीयता की साक्षी मधुर स्मृतियाँ जीवन-पर्यन्त हमारे साथ रहेंगी। वास्तव में सदैव ही निरपवाद रूप से उनके घर का वातावरण भावपूर्ण और सत्कारशील लगा है, जिस हेतु सदा हम दोनों आभारी रहेंगे। स्नेह)

# ओ सुख चाहने वालों ! सुनो....

## आचार्य विद्यासागर जी महाराज

ओ सुख चाहने वालों ! सुनो...,
सुता शब्द स्वयं सुना रहा है, कि
‘सु’ यानी सुहावनी अच्छाइयों
और
‘ता’ प्रत्यय वह
भाव-धर्म, सार के अर्थ में होता है
यानी,
सुख-सुविधाओं का स्रोत...सो-
‘सुता’ कहलाती है
यही कहती है श्रुत-सूक्तियाँ!
दो हित जिसमें निहित हों
वह ‘दुहिता’ कहलाती है
अपना हित स्वयं ही कर लेती है
पतित से पतित का जीवन भी
हित से सहित होता है, जिससे
वह ‘दुहिता’ कहलाती है।
आईये...ऐसी बेटियों के साथ मिलकर करें...
एक और....‘सृजन’

# तुम और उत्पादन

## डॉ. दाऊजी गुप्त

मैंने तुम्हारे बारे में
बरसों सोचा है
सोचने के आलावा कुछ नहीं किया है.
और अब
एक सच उभर कर सामने आया है
कि तुम रोटी के लिए
नहीं लड़ सकते,
तो बोलने की आजादी के लिए
तुम्हारी लड़ाई कितनी बेमानी है!
हालाँकि दोनों जरुरी हैं!
मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ
कि जब तपती दुपहरी में
जलती सड़कों पर
रोलरों में तुम्हारी मेहनत पीसी जाती है,
तब तुम्हारी आवाज़ क्यों नहीं निकलती?
कितना त्रासदायक और असहनीय होता है
उस समय तुम्हारा वह मौन,
जब कारखानों की मशीनों में
हजारों के उत्पादन के बाद
तुम्हारे हाथों पर सिर्फ़ कुछ सिक्के
कुत्ते को टुकड़े की तरह फेंक दिए जाते हैं!
उस समय तुम्हारे हाथ
जुड़ क्यों जाते हैं?
क्यों नहीं आकाश को
भींच लेते वह मुट्ठी में और
कब्ज़ा कर लेते
उस समस्त उत्पादन पर
सारे समाज में
समान वितरण के लिए?

# मातृ भाषा से ही खुलते हैं अन्य भाषाओं के द्वार

**प्रो. गिरीश्वर मिश्र**
(कुलपति महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा)

**अंतरराष्ट्रीय मातृ भाषा दिवस - बढ़ते वैश्वीकरण के साथ कई भाषाओं को जानने की बढ़ती जरूरत व मातृ भाषा की भूमिका –**

मातृ भाषा मनुष्य की सर्जन शक्ति का ऐसा नायाब तोहफा है जो सिर्फ उसे और उसकी दुनिया को ही नहीं बल्कि जो हो सकता है, यानी सम्भावना है, उसे भी रचता चलता है। आज विश्व में लगभग सात हजार भाषाएँ जीवित हैं और वैश्वीकरण के इस दौर में अपने से भिन्न संस्कृतियों में काम करने के इस दौर में अपने से भिन्न संस्कृतियों में काम करने के लिए दूसरी भाषा का ज्ञान जरूरी होता जा रहा है। रोजगार की खोज में और युद्ध जैसी विभीषिकाओं के चलते लोग एक देश से दूसरे देश में आवागमन करते हैं। ऐसी दशा में लोगों को अपनी भाषा के साथ दूसरी भाषाओं को भी सीखता पड़ता है। भाषाओं का सह-अस्तित्व आज जैसा है वह अनोखा है। द्विभाषिकता या बहु भाषिकता अब अपवाद नहीं बल्कि सामान्य बात है। भारत में तो द्विभाषिकता सामान्य तथ्य है। सामाजिक निकटता और क्षेत्रीयता के हिसाब से भाषाओं के बीच रिश्ता बनता है। भाषाओं के संसार में रहते हुए हम रचना भी करते है। और खुद भी रचे और बुने जाते है, जिसका सिलसिला बचपन में शुरू होता है।

बच्चे को भाषा एक अनुभव के रूप में जन्म से पहले से ही प्राप्त रहती है। माता-पिता घर में बातचीत करते हुए बच्चे के सामने नया संसार खोलते चलते हैं। उसके मस्तिष्क पर भाषा के इस पहले अनुभव की बडी़ गहरी और अमिट छाप पड़ती है, जो अचेतन स्तर पर भी सक्रिय रहती है। साथ ही बच्चे का भाषा-प्रयोग तथा भाषा-अभ्यास उसके मस्तिष्क को जरूरी पोषक खुराक भी देता है। यही मातृभाषा है। मातृभाषा के लिए प्राण न्यौछावर करने का पहला उदाहरण पूर्वी बंगाल (अब बांग्लादेश) में मिलता है। बंग्ला भाषा के मान की रक्षा के लिए ढाका में 21 फरवरी 1952 को चार लोग शहीद हुए थे। उसके बाद विश्वभर में मातृ प्रेमी खासकर बांग्लाभाषी इस दिवस को भाषा शहीद दिवस के रूप में मानकर भाषा-शहीदों का स्मरण करते हैं।

मानव जीवन के शुरूआती सात वर्ष भाषा सीखने के लिए बेहद महत्वपूर्ण पाए गए हैं। शोध अध्ययनों में बच्चों की आरंभिक शिक्षा के लिए उनकी मातृभाषा को ही सबसे उपयुक्त माध्यम पाया गया है। मातृभाषा में एक बार महारत हासिल हो जाने के साथ बच्चे के पास भाषा के उपयोग का एक साँचा उपलब्ध हो जाता है। तब उसके लिए दूसरी भाषा(एँ) सीखना सरल हो जाता है। स्कूल की भाषा मातृभाषा या घर की भाषा न हो तो यह भेद सीखने के काम को कठिन बना देता है। यदि माता-पिता उस भाषा से अपरिचित हों तो सीखना पूरे परिवार पर भार हो जाता है। जैसा कि हिंदी (या अन्य कोई भारतीय) भाषा-भाषी माता-पिता का बच्चा जब अँग्रेजी माध्यम के स्कूल में जाता है तो वे बच्चों की पढ़ाई में मदद नहीं कर पाते। ऐसे बच्चे स्कूल में नहीं टिक पाते और पढ़ाई में उनकी रुचि कम हो जाती है। जो बच्चे टिकते भी हैं उनकी शैक्षिक उपलब्धि और सर्जनात्मकता अपेक्षाकृत सीमित रह जाती है। समाज में सबको समान अवसर देने का वादा भी अधूरा ही रह जाता है। अत: जरूरी है कि मातृभाषा में आरम्भिक वास्तविकता दूसरा ही चित्र दर्शाती है। भारत भाषा के लिहाज से अजीत-सी स्थिति में है, जहाँ अँग्रेजी का मोह इस कदर उमड़ रहा है कि मातृभाषाएँ पिछड़ती जा रही हैं। शिक्षा की गुणवत्ता

को आँख मूँदकर अँग्रेजी भाषा, अँग्रेजी सलीके और कायदे-कानून के साथ जोड़ दिया गया है। प्रतिष्ठा, मान-सम्मान और वर्चस्व की दृष्टिसे आज अँग्रेजी और भारतीय भाषाओं के बीच बड़ी खाई पैदा हो गई है। बिना जाँचे-परखे हमने उसे ज्ञान की अंतिम वाहिका मान लिया है। आज हिन्दी पट्टी का युवा अँग्रेजी के चक्कर मे ज्ञान तो दूर अपनी मातृभाषा हिन्दी भी भूल रहा है। उसका भाषिक संस्कार दिन-प्रतिदिन कमजोर पड़ता जा रहा है।

हिन्दी की उपभाषाओं या बोलियों जैसे ब्रज, अवधी और भोजपुरी आदि को हिन्दी के विरुद्ध खड़ा करते हुए लोगों ने भाषा के प्रश्न को और जटिल बना दिया है। सदियों से हिन्दी इन उपभाषाओं से रस ग्रहण करती आ रही है। इसके राजनीतिक लाभ हो सकते हैं। ध्यान से विचार करें तो इनके बीच सहयोग की आवश्यकता है। भारतीय ज्ञान-विज्ञान और लोक-संस्कृति को समर्थ बनाने की दृष्टि से हिन्दी को समर्थ बनाने की जरूरत है। देशवासियों के मन में स्वदेशी भाव को जगाने के लिए समाज को उसकी अपनी भाषा मिलनी चाहिए। जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य, न्याय और शिक्षा आदि में हिन्दी का प्रयोग अभी भी बड़ा ही सीमित है। मनोरंजन और बाजार के क्षेत्रों में थोड़ी जगह जरूरी बनी है। आवश्यक है कि इसे ज्ञान और विचार की भाषा बनाया जाए। एक बहुभाषा-भाषी देश के रूप ही हम आगे बढ़ सकते हैं। यह अद्भुत है कि भारत में इस तरह के सेतु के प्रयास की पुरानी परम्परा है। देवनागरी के लिए बिनेश्वर ब्रह्म की शहादत यादगार है। 28 फरवरी 1948 को असम में कोकराझार के पास भरतमुरी ग्राम में जन्में ब्रह्म ने 1965 में कोकराझार से हाई स्कूल करके हिन्दी विशारद की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। 1971 में असम की सभी स्थानीय भाषाओं के संरक्षण तथा संवर्धन के लिए हुए आंदोलन में वे 45 दिन तक डिब्रूगढ़ जेल में भी रहे। वे 1996 और 1999 में बोडो साहित्य-सभा के अध्यक्ष रहे।

असम में बोड़ो भाषा के लिए लिपि को लेकर कई बार आंदोलन हुआ और ब्रह्म ने रोमन लिपि के स्थान पर देवनागरी लिपि का समर्थन किया और वह स्वीकार कर ली गई लेकिन, राज्य में उग्रवादी गुट 'नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड' (एनडीएफबी) के दबाव से बोडो साहित्य सभा में फिर से लिपि का प्रश्न उठाया गया। ब्रह्म ने इस बार भी देवनागरी लिपि का समर्थन किया और एनडीएफबी की धमकियों की उपेक्षा की, जो देवनागरी की बजाय रोमन लिपि की माँग करता रहा है। वे देवनागरी को सभी भारतीय भाषाओं के बीच सम्बन्ध बढ़ाने वाला सेतु मानते थे। उनके प्रयास से बोड़ो पुस्तकें देवनागरी लिपि में छपकर लोकप्रिय होने लगीं। इससे उग्रवादी बौखला गए और 19 अगस्त, 2000 की रात में उनके घर पर गोली मारकर उनकी हत्या कर दी गई। ब्रह्म 'देवनागरी के नवदेवता' कहे गए। ब्रह्म जैसे सेतु हर भारतीय भाषा में मौजूद हैं। इनका उपयोग हिन्दी व अन्य मातृभाषाओं को मजबूत बनाने में किया जाए जो ज्ञान-विज्ञान के नए क्षितिज खोलेंगे इसमे शक नहीं।

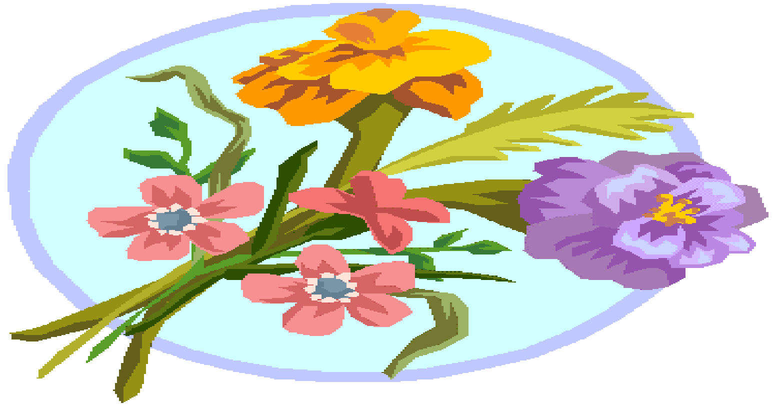

# मेरा देश

डॉ. स्नेह ठाकुर

मेरा देश आज
दो नामों में बँट गया है
भारत और इण्डिया
भारत पूर्वीय दैवीय गुणाच्छादित सभ्यता का प्रतीक
और इण्डिया पाश्चात्य सभ्यता का.
भारत इण्डिया के भार से
दबा जा रहा है
अधोपतन के गर्त में
डुबाया जा रहा है.
भारत की सात्विक संस्कृति की छाती पर
इण्डिया की तामसिक वृत्ति
चढ़कर बैठ गई है
और उसे सौतेले भाई की भाँति
चौखट से बाहर
निष्कासित कर रही है.
एक ओर जहाँ इण्डिया
दिन दूना रात चौगुना
उन्नति के शिखर पर
पहुँच रहा है,
वहीं भारत
सहमा-सा, ठिठका-सा
दम तोड़ता हुआ
घुटनों पे खड़ा रह गया है.
जिस भारत में दूध की नदियाँ बहती थीं
वहाँ के नागरिक को आज कहीं-कहीं
स्वच्छ पानी भी दुर्लभ है

इण्डिया का निवासी
पेप्सी, कोक, बियर की बहुलता से
सराबोर है.

भारत आज भी
पगडंडी पर
बैलगाड़ियों में भ्रमण करता है
इण्डिया में कारों की कमी नहीं
एक्सप्रेस हाइवे पर
फर्राटे से
मार्ग में आने वाले
किसी भी अनचाहे व्यवधान को
कुचलती चलती है.

इण्डिया का निवासी
अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच पढ़ता है
भारत का
रोजी-रोटी के चक्कर में
पेट की आग का ईधन जुटाने
तन ढाँकने
मज़दूरी-मशक्कत करने में
व्यस्त रहता है
क ख ग की शिक्षा से भी
दूर छिटक जाता है.

इण्डिया की महिलाएँ
चुस्त-दुरुस्त फैशन में
शिखरोन्मुख हैं
सुंदरियाँ मिस यूनीवर्स, मिस वर्ल्ड के पद पर

पदासीन हैं
पर भारत की नारी
अभी भी उत्पीड़ित है.

इण्डिया में
दिखावे के चक्कर में
लाखों रुपये खर्च किए जाते हैं
पर भारत में
करोड़ों लोगों को
दो जून की रोटी भी नसीब नहीं होती है.

भारतीय साहित्य, संस्कृति दम तोड़ रही है
और पश्चिमीय सभ्यता जोरों से पनप रही है
लोकगीत, नृत्य, कला
अपने ही घर में सिर झुका
लज्जित-से कोने में खड़े हैं
और इण्डिया के पाँव
पाश्चात्य धुन पर थिरक रहे हैं.

भारत दाने-दाने और पैसे-पैसे का मोहताज़ है
और इण्डिया काले धन से मदहोश है
इण्डिया पर्याय है ऐय्याशी का
तो भारत संघर्ष का.

इण्डिया और भारत के बीच
एक गहरी खाई खुद गई है
जो दिनों-दिन अंधे कुएँ-सी
गहराती जा रही है.

भारतीय इंडियन बन
अपनी मातृभाषा को परे धकेल

पराई भाषा में,
उधार मिली संस्कृति में
सुखानुभूति अनुभव करता है
यह कैसी विडम्बना है!
एक ज़माने का इतना समृद्धशाली भारत
माँगी हुई संस्कृति के बल पर
अपने को ऊँचा दिखाने के विकृत प्रयत्न पर
दिखता है कितना दारुण, हास्यास्पद.
जो देश था हर गौरव से भरपूर
वही उन सब को तुच्छ मान
नकली हीरों की चमक से प्रभावित
गलत सिद्धांतों की बैसाखियाँ लगाकर
भौतिकता की अंधाधुंध दौड़ में शामिल
बदहवास भागता जा रहा है.
काश! भारत
स्वयं के नाम से ही जाना जाता
उसका अँग्रेजी अपभ्रंश रूपांतरण न होता
भारत भारत ही रहता इंडिया न बनता.
काश! आज भी भारत जाग जाए
अपना मूल्य पहचाने
संकट के कगार पर खड़ा भारत
अतीत के असंख्य अनमोल रत्नों की
धूल झाड़-पोंछ कर
उन्हें चमका-चमका कर
अपने बूते पर
विश्व में अपना तिरंगा फहराए.
जय भारत, जय भारती
जय भारत, जय भारती.

# ससुर जी उवाच

पद्मश्री डॉ. अशोक चक्रधर

डरते झिझकते
सहमते सकुचाते
हम अपने होने वाले
ससुर जी के पास आए,
बहुत कुछ कहना चाहते थे
पर कुछ
बोल ही नहीं पाए।

वे धीरज बँधाते हुए बोले-
बोलो!
अरे, मुँह तो खोलो।

हमने कहा-
जी. . . जी
जी ऐसा है
वे बोले-
कैसा है?

हमने कहा-
जी. . .जी हम
हम आपकी लड़की का
हाथ माँगने आए हैं।

वे बोले
अच्छा!
हाथ माँगने आए हैं!
मुझे उम्मीद नहीं थी
कि तू ऐसा कहेगा,
अरे मूरख!
माँगना ही था
तो पूरी लड़की माँगता
सिर्फ़ हाथ का क्या करेगा?

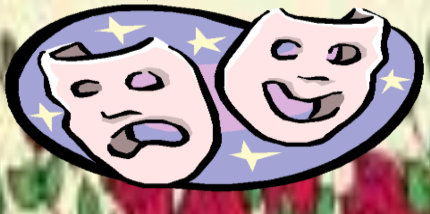

# मातृ-दिवस

ओम गुप्ता

माँ से ममता शब्द बना, माँ ममता का रूप।
माँ जैसा दूजा नहीं, ढूँढें सकल सुर भूप॥

कर लें माँ को याद हम, मातृ-दिवस आया आज।
किरपा जिसकी से हुए, सफल हमारे काज॥

है हर साँस तेरी माता, हर धड़कन में तेरा वास ।
शत-शत सब वन्दन करते, वायु अग्नि आकाश॥

हो नतमस्तक मैं वंदन करूँ, पूजनीय हे मात।
कृपा आपकी बनी रहे, प्रातः शाम दिन रात॥

हर पल पाला जिसने हमको, करें याद हर रोज।
'ओम' की ॐ से प्रार्थना, माँ कृपा करें हर रोज॥

# एक मैं एक वो

देवी नागरानी

हाँ वो वही थी, जिसे मैं पंद्रह साल से भुलाने की कोशिश करते हुए भी भुला न पाई.

काले कोयले सा बदन, कसी हुई चमकती चमड़ी, काले चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आँखें जो दूर से दो सफेद गोलाकार रंग-मंडप सी लगती थीं, गैराज के सामने रुकी किसी खटारी गाड़ी की जलती बुझती हेडलाइट्स की तरह. बालों का जूड़ा, सर के पीछे बेतरतीब ढंग से ठूँसा हुआ, उस पर अस्त व्यस्त धागों में पिरोए केसरी फूल गूँथे हुए लिपटे थे ...! बांद्रा से थाने तक साथ सफर करते देखा था उसे!

मैं लेडीज कंपार्टमेंट में सीट के किनारे बैठी खुद को गिरने से बचाने के प्रयास में, कभी अपने पीछे 'रॉड' को पकड़ती, कभी उसके साड़ी के पल्लू को पकड़ती. खिंचाव लाज़मी था. यह उसके मुड़ने और मुड़कर मेरी ओर देखने से ज़ाहिर होता था.

'सॉरी....!' मैंने उसकी ओर देखते हुए कहा.

वह बस मेरी ओर देखती रही. फिर धीरे-धीरे उसकी कजरारी आँखों में एक दर्द भरी मुस्कान ने जन्म लिया.

मेरी नज़र अब उसकी आँखों पर टिक न पाई, नीचे उतर आई.... और धीरे-धीरे उसके चुस्त कसे हुए जवान बदन से होते हुए उसके पेट पर आ रुकी.

वह पेट से थी, यह बात तो तय थी. शायद सातवाँ महीना हुआ होगा. उसके हाव भाव से लगा कि वह अपने किसी दर्द की दवा पाना चाहती थी. कभी आँखें मींच लेती, तो कभी होंठ भींच लेती, कभी दाहिना हाथ सूती साड़ी में डालकर पेट के उभार पर फेर लेती.

मुझे लगा वे शुरुआती प्रसव पीड़ा के आसार हैं, क्योंकि वह बार-बार अपने दाएँ पैर को बाएँ पैर पर रखकर जोर से दबा रही थी. मेरी नज़र जब उसके पैरों से उठ कर उसके चेहरे की ओर आई तो देखा - उसके होंठ ज़ोर से भींचे हुए थे, आँखों से अश्रु बह रहे थे. तय था कि उसे बहुत पीड़ा हो रही थी. शायद असमय ही दर्द जागा था, वह भी इस दीवानगी में भागती हुई फास्ट ट्रेन में!

नारी हूँ, जानती हूँ यह पीड़ा वक्त-बेवक्त ही आती है. जब दर्द एक अनजानी खुशी को जन्म देने को आतुर होता है तो मीठी-मीठी सी कसक के साथ तन में तरंगें पैदा करता हुआ दर्द भी उठता है.

"यहाँ बैठ जाओ" मैंने उसकी साड़ी का पल्लू खींचते हुए उसको अपनी ओर आकर्षित किया. वह शायद अब दर्द के कारण मुड़ने की स्थिती में नहीं थी, पर उसकी गर्दन के मोड़ से उसकी झुकी आँखों में एक सवाल तैरता नज़र आया. जवाब था मेरे पास. एक अनुचित स्थिति में एक उचित प्रयास करने की कोशिश मेरे बस में थी. पढ़ा था कहीं, "कितनी अच्छी बात है कि विश्व में सुधार लाने के लिए किसी को भी एक पल का इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है!'

मुझे भी नहीं थी. उसी पल अपनी जगह से उठते मैंने उसे बाँह से पकड़कर बैठने का अनुरोध किया. वह बैठ गई एक आज्ञाकारी बालिका की तरह. यह उसकी विवशता थी. अब मैं उसके स्थान पर

खड़ी, निरंतर उसकी ओर देखती रही. उसके चेहरे के हाव-भाव पढ़ती रही उसके बारे में सोचती रही, जिसे मैं किसी भी कोण से नहीं जानती थी. पर एक अनजाना लगाव-सा हो गया इन कुछ पलों में. संवेदनात्मक स्थिति में शायद मौन ने बहुत कुछ बाँटा, कुछ उसने, कुछ मैंने. बिन बोले नैनों की भाषा भी बहुत कुछ कह जाती है, यह तब जाना जब उसने कठिन प्रयास के बाद, अपनी बाँहों को आगे करते हुए दोनों हाथ अपनी गोद में जोड़ दिए. सिर्फ आँखें मेरी ओर टकटकी बांधे देख रही थी. यह उसके 'धन्यवाद' कहने की शैली थी.

"सब ठीक है न?" मैंने उसके कंधे पर अपने दाएँ हाथ से मखमली दबाव डालते हुए पूछ लिया.

बस उसने सिर्फ मेरी ओर देखा, हल्के से अपना सर हिलाया और फिर से जुड़े हुए हाथों में हरकत आई.

मैं समझ गई, वह फिर से आभार प्रकट कर रही है मूक भाषा में. मैंने अपना ध्यान उसकी ओर से हटाकर खिड़की के बाहर भागती-दौड़ती उन इमारतों पर धर दिया जो ट्रेन की रफ्तार के बावजूद विपरीत दिशा में भाग रही थीं. जीवन में आगे भागते-भागते, कभी शायद खड़े होकर हम यह नहीं सोचते कि जिंदगी हमसे क्या छीन रही है?

अचानक ट्रेन रुक गई, और जाना कि वही मेरा पड़ाव था. मैं हड़बड़ा कर धक्के देती हुई अपना रास्ता बनाकर आगे बढ़ी और मुझे एहसास हुआ कि कोई मुझे धक्के देकर आगे बढ़ने में मदद कर रहा है. जैसे ही पाँव प्लेटफार्म पर टिके तो देखा, वह गर्भिणी औरत भी लगभग मेरे साथ सटकर खड़ी थी. उसकी अनुनय-विनय करती आँखें मेरे भीतर तक उतर रही थी. हम दोनों ने एक दूसरे की आँखों में झाँका, कहा कुछ नहीं. शायद हमारे पास शब्द ही नहीं थे जो हम एक-दूसरे को समझा सकें. यह मैं भली-भाँति जान गई थी कि भाषा-विज्ञान भाव मुद्रा से भी लिखा-पढ़ा जा सकता है. मैंने देखा, वह हाथ जोड़ने में असमर्थ थी, क्योंकि उसने दोनों हाथों के गोलाकार में अपना पेट थाम रखा था.

नारी मन भाँप गया. मैं जल्दी-जल्दी आगे बाहर की ओर बढ़ी और वह सुस्त रफ्तार से मेरे पीछे-पीछे. मैंने एक टैक्सी वाले से बात की और उसे भीतर बैठने के लिए जब निमंत्रण दिया, तो वह दो कदम पीछे की ओर हटी. मैं दंग रह गई, उसकी प्रतिक्रिया देख कर. वह हाथ के इशारे से मुझसे आग्रह कर रही थी - तुम जाओ... मैं यहाँ रुकती हूँ. कोई आने वाला है मुझे लेने... जाओ जाओ.." बार-बार हाथ हिलाकर संकेत दे रही थी.

मैं टैक्सी में बैठी और टैक्सी मेरे दिए हुए नियमित पते पर मुझे पहुँचाने में पहल कर रही थी. अब उसके और मेरे बीच का फासला बढ़ रहा था. कुछ पल पहले कितने पास थे हम, और अब कितने दूर हुए जा रहे हैं. मैं सोचती रही उसके बारे में, जो उसे लेने आने वाला था. वह समय पर नहीं आया, क्यों? शायद कोई आने वाला ही न था? कौन जाने वह किस दुविधा जनक स्थिति में थी, या अपनी जान बचाकर किसी से पीछा छुड़ाने के लिए उस गर्दी से लदी ट्रेन में चढ़ गई थी. उलझन भरी मनोस्थिति से मैं तब भी घिरी हुई थी और आज भी.

सोच की कड़ी जो बरसों पहले टूटी थी, अचानक आज फिर जुड़ गई. वह सामने खड़ी थी. वही रंग, वही रूप, वही आँखें. भीड़ में भीड़ का हिस्सा थी, पर फिर भी सबसे अलग. उसने मुझे देखा, मैंने उसे. वह रुकी, और मैं भी रुकी. उसने अपने क़दम बढ़ाकर खुद को मेरे सामने लाकर खड़ा किया.. और देखते ही देखते वह ज़मीन की ओर झुकी, मेरे पैरों को छुआ और दंडवत प्रणाम करते हुए दायें हाथ से ज़मीन को कई बार छूकर वही हाथ अपने माथे पर फिराती रही.

मैंने झुक कर उसे आशीर्वाद देते हुए कहा- "कैसी हो तुम?'

"अच्छी हूँ, आपके आशीर्वाद से..."

"मेरा आशीर्वाद...सदा खुश रहो." मैं जैसे बेहोशी से होश में आई.

मुद्राओं का स्थान भाषा ने ले लिया. भाषा-विज्ञान के बारे में मेरी समझ अब शून्य होने लगी.

"हाँ! आपका आशीर्वाद....!"

"वो कैसे...." मैं खुद को सँभालने में प्रयासरत थी. अब अवस्था कुछ ऐसी थी कि गूँगा कह रहा था और बहरा सुन रहा था .

"हाँ, अम्मा उस दिन आपने मुझे बचा लिया. मेरा बेवड़ा पति मुझे मार काटने पर उतारू हो गया था. उसे शक था कि मेरे पेट में बच्चा उसका नहीं, किसी और का था." कहते हुए उसने एक लम्बी साँस ली.

मेरी साँस रुकने-सी लगी. इतनी साफ सुथरी प्रवाहमान भाषा, बेबाकी से कही उसकी आपबीती सुनते मेरा सर चकराने लगा.

"हे राम....." मेरे मुँह से अनायास ही निकला.

"अम्मा, उस दिन आपकी टैक्सी जैसे ही आगे बढ़ी, वह भी उसी ट्रेन से उतर कर, मेरा पीछा करते हुए आ पहुँचा. मुझे बालों से खींचता हुआ, धक्के देता हुआ मारते-मारते हताश हो रहा था. मैं गिरती-पड़ती रही, हाथ जोड़कर उसे विश्वास दिलाती रही कि वह बच्चा उसका ही है. पर उसके सर पर खून सवार था और उसने सच में उस बच्चे का खून कर दिया.....! अब मैं बे-औलाद हूँ, क्योंकि कोख से पनपते अपने बच्चे की रक्षा नहीं कर सकी. खुद को गुनहगार समझकर कर मैं अपने लिए सज़ा चुनी. सब कुछ छोड़ दिया, घर-पति, पड़ोसी, वह लाँछन भरी बदबूदार बस्ती! और आज अनाथ आश्रम में बच्चों के पालन-पोषण में अपना जीवन व्यतीत करती हूँ. न कोई मेरा अपना है, न मैं किसी की. बस वह आश्रम ही मेरा घर है, और वहाँ रहने वाले बंधु मेरा परिवार....!"

"इतना लम्बा सफ़र तय कर आई हो ....?" मैं यह तय न कर पाई कि मुझे आगे क्या कहना चाहिए?

"अम्मा आपको बहुत याद किया, भगवान को प्रसाद चढ़ाया कि एक बार आपका दर्शन फिर से मिल जाये. वह इच्छा भी आज पूरी हुई. नमस्कारम अम्मा." कहकर वह जाने के लिए मुड़ी.

"अरी रुक तो. अपना नाम तो बता." मैं उससे जुड़ने के लिए तत्पर थी.

“नाम, अब मेरा कुछ भी अपना नहीं अम्मा. न घर, न घरवाला, न नाम.....! बस अब मैं सिर्फ 'अक्का' हूँ, उन अनाथ बच्चों की 'अक्का', जिन की सेवा के लिए नियुक्त की गई हूँ. उनकी ज़बान से “अक्का, अक्का...' की पुकार मेरे कानों तक जब पहुँचती है तो मैं जी उठती हूँ अम्मा.”

“पर तुम तो.....” सवाल मेरे गले में ही धँस गया.

“आप यही पूछना चाहती है ना कि मैं बोल रही हूँ .....”

“हाँ! तुम्हारी बातें सुनकर हैरान भी हूँ और खुश भी.”

'अम्माँ, उस दिन बोल न पाई, सकते में आ गई थी उसकी बातें सुन-सुन कर. कहता था “ज़बान काट लूँगा अगर ज़बान खोली तो.” मैं डर गई, वह दरिंदा ऐसा भी कर सकता है, पीने के बाद कहाँ किसको होश रहता है.”

“क्या तुम्हारा पति इतना बेदर्द है जो अपनी पत्नी पर हाथ ......!” मैं अभी पूरी बात कह भी न पाई तो वह बोल पड़ी, “अम्मा, उस नामर्द की याद आते ही मैं आज भी गूँगी हो जाती हूँ. उस माटीमिले के सवाल का गलत जवाब दे दिया था उस दिन. बहुत गुस्से में भर गई थी उसके आरोप सुन-सुनकर. जब उसने फिर वही लाँछन दोहराया,' यह बच्चा मेरा नहीं है” तो मन की उगलती आग ने कह दिया “हाँ, हाँ, यह बच्चा मेरे यार का है.”

बस फिर क्या था, उसने आगे बढ़ कर मुझे दबोच लिया अपनी टाँगो और बाहों की जकड़न में और अपने हाथों में पकड़ी हुई जलती हुई बीड़ी जबरदस्ती मेरा मुँह खोलकर, मेरी जीभ पर न जाने कितनी बार रखी, मैं बेज़बान हो गई. बस अपनी आँखों से अश्रु बहाती रही. उसका गुस्सा अपनी मनमानी करके जब ठंडा हुआ तो वह कुछ देर के लिए बाहर निकला. जाने क्या सोच कर मैं भी विपरीत दिशा में घर से गिरती-पड़ती भाग निकली. खोली से कुछ दूरी पर स्टेशन है. अपने बचाव के लिए भीड़ का सहारा लेकर मैं उस ट्रेन में चढ़ गई, बिना सोचे कि वह किस दिशा में और कहाँ जा रही है.” कहते हुए उसने अपनी जीभ बाहर की ओर निकाली और फिर तुरंत मुँह बंद कर लिया...!

मैंने देखा उस लाल-काली जीभ को, जिसपर जलने के गोलाकार धब्बे मौजूद थे. मैं सोच रही थी 'क्या अमानुषता इस हद तक भी जा सकती है'? सम्भव की सीमा का पता लगाने के लिए आगे बढ़कर असम्भव के दायरे में जाना होता है, इस सच को स्वीकार करने के लिए. मैंने तो सिर्फ़ देखा, उसने भोगा है, जिया है. हक़ीक़त भ्रम नहीं हो सकती...!

इसी हक़ीक़त और भ्रम के चक्रव्यूह से उसकी आवाज़ मुझे बाहर ले आई.

“अम्मा, तब भी मैं आपके सामने थी और आप मेरे सामने. पंद्रह साल के बाद आज भी हम एक-दूसरे के आमने-सामने, मैं आपके हर सवाल का प्रत्यक्ष जवाब हूँ अम्मा!”

मैं निशब्द होकर रह गई. क्या मानवता अपनी पहचान इतनी खो बैठी है कि उसे अपनेपन की परिभाषा भी याद नहीं. उसकी कही बात ज़हन में बार-बार गूँजती रही” - न कोई मेरा अपना है, न मैं किसी की हूँ. बस वह आश्रम ही मेरा घर है, और वहाँ रहने वाले बंधु मेरा परिवार….!”

यह वही थी, जिसका नाम है 'अक्का' और वही 'अक्का' आज अपने परिश्रम से पाई हुई पहचान, और ओहदे की परिधि में बहुत खुश है.

उससे मिलकर मैं बेहद खुश हूँ. अब परायेपन की सभी दीवारें गिर चुकी हैं. मेरा उससे अक्सर मिलना होता रहता है. आश्रम में, आश्रम की अन्य गतिविधियों व कार्यक्रमों में. जहाँ कहीं भी वह आने का बुलावा भेजती है, मैं चली जाती हूँ. स्नेह का यह नाज़ुक बंधन है जिसका कोई रंग नहीं, कोई नाम नहीं!

यह वही प्रेम है जिसके लिए रूमी ने लिखा है -

"प्रेम ने मेरे हृदय को गिरफ्तार किया
मेरे रुदन ने पड़ोसियों को रात भर जगाए रखा
अब, जब मेरा प्रेम गहरा हुआ है
मेरे क्रंदन में ठहराव आया है.
शायद
जब आग भड़क उठती है, तो
धुँआ गायब हो जाता है!
परिधियों से परे, प्रकृति व मानव के अटूट बंधन का आकार साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा है.

## बरसात न होती

### धनंजय कुमार

न मैं होता, न ग़म होता, मगर वो बात न होती
अगर इन्सान न होता तो क़ायनात न होती.

चलो माना समन्दर ने कई आलम डुबोए हैं
न ये होता तो सावन की झड़ी, बरसात न होती.

कभी हँसकर कभी रोकर अगर तुम हमसे न मिलते
तुम्हें फिर अपना कहने की मेरी औक़ात न होती.

ये आलम ज़िन्दगी का एक सलीके से गुज़र जाता
कभी सावन के मौसम में ख़िजां की बात न होती.

अगर हम सोच को अपनी, ज़माने से अलग रखते
तो अपनी ज़िंदगी इतनी कभी कमज़ात न होती

# सभ्यता और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू

**मदन लाल गुप्ता**

सब कहते हैं, 'एक हमारी ही संस्कृति उत्कृष्ट है.' सबकी महत्वाकांक्षा है कि वही सारे संसार पर लादी जाय. मेरी संस्कृति के समान दूसरी हो ही नहीं सकती. अगर पूछा जाए कि तुम्हारी संस्कृति ही क्यों लादी जाए, तो कहते हैं – वही सबसे अच्छी है. अच्छी क्यों है? क्योंकि वह हमारी है.

समाज का जीवन दो आधार स्तम्भों पर खड़ा है; सभ्यता तथा संस्कृति. 'सभ्यता' भौतिक विकास का नाम है. हम दिनों दिन भौतिक क्षेत्र में उन्नति कर रहे हैं. टैलीफ़ोन, हवाई जहाज़, कंप्यूटर, इन्टरनेट आदि यह सब भौतिक विकास हैं, इन सब में संसार आगे से आगे बढ़ता जा रहा है. इसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विकास भी 'सभ्यता' के अंतर्गत हो रहे हैं. समाज में कभी बहुपत्नी विवाह था परन्तु आज एक पत्नी विवाह है; वस्तुओं के आदान-प्रदान से (बार्टर सिस्टम) लेन-देन होता था, आजकल डालर, रूपये, चेक, नोट और सिक्के चल पड़े हैं. पहले एक राजा राज्य करता था, आज गणतन्त्र है. 'सभ्यता' के इन सब क्षत्रों में संसार उन्नति कर रहा है, बदल रहा है. 'संस्कृति' इस प्रकार का परिवर्तनशील तत्व नहीं है, तथा यह एक स्थिर तत्व है जो किसी समाज को दूसरों से भिन्न बनाता है.

'सभ्यता' के तत्वों को सब आसानी से अपना लेते हैं, उनमें हिन्दुस्तानी, जापानी, अफ़गानी काले गोरे का भेद नहीं है. रेल, हवाई जहाज़ सब देशों में एक समान हैं; सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाएँ भी सब देशों की एक समान हैं या होती जा रही हैं, परन्तु संस्कृति सब की भिन्न-भिन्न है, अपनी अपनी है. 'संस्कृति' का निर्माण कुटुम्बों में, कुलों में, सीमित समुदायों में हुआ है, उस 'संस्कृति' के कारण ही भारत का दूसरों से पृथक अस्तित्व है, उस 'संस्कृति', के कारण ही भारतवासी अपने को दूसरों में मिला देने के स्थान में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को बनाए हुए हैं. यह 'संस्कृति' जो हमारे लिए प्राणों के समान है, 'कुल' से, 'कुटुम्ब' से, अपने 'समुदाय' से उत्पन्न होती है, क्योंकि कुल, कुटुम्ब, समुदाय की प्राचीन काल से चली आ रही परम्पराओं, मर्यादाओं का नाम ही 'संस्कृति' है.

विद्वानों ने संस्कृति और सभ्यता को एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में नामित किया है. विलियम ऑगबर्न ने सामाजिक बदलाव के अपने सिद्धांत में संस्कृति के दो पहलूओं की ओर इशारा किया है, भौतिक (material) और अभौतिक (non-material). उसके लिए भौतिक पहलू सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है और अभौतिक पहलू संस्कृति का. उन्नीसवीं सदी के गद्यावली या पद्यावली लेखकों के अनुसार संस्कृति पहले से थी और सभ्यता बाद में विकसित हुई. संस्कृति को आगे बढ़ता हुआ नहीं कहा जा सकता, जबकि सभ्यता हमेशा उन्नति की अवस्था में है. Costas Drossos, विश्वविद्यालय पटरास के अनुसार सभ्यता संस्कृति से एक बड़ी इकाई है. संस्कृति सभ्यता में एक हिस्सा हो सकती है तथा प्रत्येक सभ्यता में कई अलग संस्कृतियाँ हो सकती हैं. रासबिंदु मेहता, महाराजा कृष्णकुमार सिंहजी भावनगर यूनिवर्सिटी - ऑस्कर वाइल्ड के प्रसिद्ध उद्धरण के अनुसार, "Culture is what we have and civilization is what we are."

क्या संस्कृति मनुष्य तक सीमित है (एडवर्ड ट्य्लर)? मानव अस्तित्व के लिए संस्कृति एक शक्तिशाली उपकरण है. यह लगातार बदल रही है और आसानी से खो जाती है क्योंकि यह केवल हमारे मन में मौजूद है. व्यवहार विज्ञान में इस विषय पर भिन्न भिन्न राय है कि क्या केवल मानव ही संस्कृति को बनाता और उसका उपयोग करता है? जानवरों की कई प्रजातियों ने जो कुछ स्वयं को जीवित रखने के लिए सीखा है वह अपने बच्चों को सिखाती हैं. वनमानुष और अन्य अपेक्षाकृत बुद्धिमान वानरों के बच्चों को भी प्रभुत्व पदानुक्रम और उनके समुदायों के भीतर सामाजिक नियमों के बारे में

सिखाया जाता है. मादा को शिशुओं की देखभाल और नर्स करना तथा नर को संभोग के लिए बुनियादी कौशल सिखाया जाता है.

मार्क ट्वेन ने जब १८९६ में भारत की यात्रा की तो उसने लिखा था, 'अन्य सभी देशों में धर्म, कंगाल हैं. भारत ही करोड़पति है. भारत सांस्कृतिक रूप से परिपूर्ण राष्ट्र है. भारत, मानव जाति का पालना, मानव बोल चाल का जन्मस्थान, इतिहास की माँ, दादी की कथाओं और परदादी की महान परम्पराओं का देश है. मानव इतिहास की सबसे कीमती और सबसे अधिक शिक्षाप्रद सामग्री केवल भारत में ही है.' कई अन्य विदेशी विद्वानों ने भी समय समय पर भारत का दौरा किया और यहाँ की संस्कृति को संसार में सबसे उन्नत माना, यही हमारी संस्कृति है और हम भारतियों को इस पर गर्व है.

भारत पर विदेशियों ने अनेक बार आक्रमण किया और भारतीय संस्कृति को नष्ट करने का प्रयास किया, लेकिन वो संस्कृति ही क्या जो नष्ट हो जाए. भारत आए अनेक आक्रमणकारियों ने भी माना कि इस देश की संस्कृति को नष्ट करना असम्भव है. विभिन्न वेद शास्त्र हमारी संस्कृति का हिस्सा हैं, शास्त्र के द्वारा नियन्त्रित जीवन संस्कृति का परिणाम होता है. (जीवन की विद्या, कला, आचार-नीति और जो श्रेष्ठ आदर्श मनुष्य-जाति को उपलब्ध हैं, वे सभी शास्त्रों में हैं), इसके अतिरिक्त भारत की अनेक परम्परायें जैसे अतिथि देवो भव:, सामाजिक आचार व्यवहार, शरणागत रक्षा, सर्वधर्म सम्भाव, वसुधैव कुटुम्बकम और अनेकता में एकता जैसी प्रमुख हैं.

एक समय था जब भारत में विदेशी त्योहारों को बड़ी घृणा से देखा जाता था, मनाना तो बहुत दूर की बात थी. परन्तु अब भारत में विदेशी त्योहारों वेलेंटाइन डे, हनी मून, सेंट पीटर डे, बैचुलर पार्टी, न्यू इयर, हेलोवीन, क्रिसमस, हैप्पी सिक्सटीन (केवल लड़कियाँ), को बड़े उत्साह से मनाया जाता है. यद्यपि उनके सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक रूप से भारत का दूर का भी कोई वास्ता नहीं है. भारतीय संस्कृति के अनुसार जन्माष्टमी पर व्रत रखते हैं, दीपावली पर लक्ष्मी पूजा करते हैं जब कि क्रिसमस और (पहली जनवरी) नव वर्ष पर मदिरा और मांस का पूरा प्रभाव रहता है.

प्राचीन काल से ही हमें बताया गया है कि घर आया अतिथि भगवान् के समान है, हम स्वयं चाहे भूखे रह लें, परन्तु अतिथि का पेट भरना आवश्यक है. हमारी संस्कृति हमें शिक्षा देती है कि हमें समाज में कैसा व्यवहार/आचरण करना चाहिए और वृद्धों के प्रति विशेष सम्मान दिखाना चाहिए. हिन्दू धर्म में प्रकृति को हर रूप में पूजा गया है. वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि और आकाश तत्वों को पूजा जाता है.

आजकल मेट्रोपोलिटन शहरों पर गर्व किया जाता है, मुंबई में ३५-४० मंजिल के मकान हैं, साठ-साठ मील के दायरे तक मकान ही मकान बने हुए हैं, वैसे भारतीय संस्कृति में बड़े बड़े तपोवनों/आश्रमों पर गर्व किया जाता था, अमुक ऋषि दण्डकारण्य में रहते थे. उस संस्कृति में शहर तो थे, परन्तु शहरों की अपेक्षा जंगल (पञ्चवटी) अधिक प्रसिद्ध थे. शहर चारों ओर से ऐसे वनों से घिरे हुए थे जिन में तपस्वी लोग अपनी कुटियाओं में बैठे आध्यात्मिक तत्वों का चिन्तन किया करते थे. तपोवनों की वह संस्कृति आज की नगरों की सभ्यता से मौलिक रूप से भिन्न थी. आजकल के लोग तपोवन के उन ऋषियों/मुनियों के लिए सभ्य शब्द का प्रयोग करते हुए शर्माते हैं और अगर हम उन्हें सभ्य न कहें, तो क्या संस्कृति की दृष्टि से वे हमारे से घटिया थे.

सभ्यता बाहर की चीज़ है, संस्कृति-अच्छी हो बुरी हो - भीतर की वस्तु है. पहले ऋषि जंगल में कुटी बना कर रहते थे, चर्म पहनते थे, भगवान कृष्ण घोड़ों के रथ पर सवारी करते थे, सभ्यता की दृष्टि से आजकल के महलों में रहने वालों, मुलायम कपड़ा पहनने वालों और हवाई जहाज़ की सवारी करने वालों से वे नीचे थे, परन्तु संस्कृति की दृष्टि से वे आजकल के लोगों से बहुत ऊँचे थे, क्योंकि मनुष्यको मनुष्य बनाने वाले संस्कार उनके रोम-रोम में बसे हुए थे.

सभ्यता भौतिक और संस्कृति आध्यत्मिक - सभ्यता तथा संस्कृति में मौलिक अंतर है. सभ्यता शरीर है संस्कृति आत्मा है, सभ्यता भौतिक विकास का नाम है, संस्कृति आध्यात्मिक विकास का नाम है. कंप्यूटर, फ़ैक्स, इंटरनेट, कार, हवाई जहाज़ आदि यह सब सभ्यता के विकास के प्रमाण हैं; सत्य-असत्य, ईमानदारी-बेईमानी, संतोष-असंतोष, संयम-संयमहीनता आदि, ये सब संस्कृति के ऊँचे या नीचे विकास के प्रमाण हैं.

संस्कृति के क्षत्र में जो लोग अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा इसी प्रकार के आध्यात्मिक तत्वों पर चलेंगें वे ऊँची संस्कृति को जन्म देंगें, जो हिंसा, असत्य, और स्तेय आदि दूसरे प्रकार के तत्वों पर चेलेंगें वे नीची संस्कृति को जन्म देंगें. इन दोनों में एक ऊँची संस्कृति, दूसरी नीची संस्कृति होगी परन्तु उसे सभ्यता नहीं कहा जायेगा. एक व्यक्ति पैसेवाला है, बड़ी सुंदर कोठी में रहता है, उसके पास कारें, नौकर और हेलीकाप्टर हैं, परन्तु झूठा, बेईमान, तस्कर तथा शराबी है, वह स्वयं को सभ्य कहलवा सकता है, पर वह सु-संस्कृत नहीं है, क्योंकि वह सत्य के स्थान में असत्य को जीवन का आधार बनाए हुए है.

आजकल आतंकवादी निर्दोष लोगों की हत्या करके अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं. इस प्रकार यदि वह अपना लक्ष्य पूरा करने में सफल हो भी जाते हैं तो क्या प्रजा ऐसे साम्राज्य में सुखी रह सकेगी. वैदिक संस्कृति के पुजारी राम ने लंका के दुराचारी रावण का वध करके, लंका पर विजय प्राप्त करने के पश्चात लंका पर अपना राज्य स्थापित नहीं किया, अपितु लंका का राज्य वापिस लंका के लोगों को सौंप दिया.

सभ्यता और संस्कृति साथ-साथ भी चल सकती हैं और एक दूसरे के बिना भी रह सकती हैं. यह हो सकता है कि एक देश भौतिक दृष्टि से अत्यंत उन्नत हो, उसके देशवासी अध्यात्मिक तत्वों को भी जीवन का मुख्य सूत्र समझते हों. इस अवस्था में उस देश की सभ्यता तथा संस्कृति दोनों ऊँची कही जायेंगीं. यह भी हो सकता है कि एक देश भौतिक द्रष्टि से बहुत ऊँचा हो, परन्तु अध्यात्मिक दृष्टि से बहुत नीचा हो. वहाँ मोटरें हों, परन्तु मोटरों पर बैठकर लोग डाके डालते हों: रेडियो हों, परन्तु रेडियो पर अश्लील और गंदे गाने गाए जाते हों आदि आदि.

इस अवस्था में उस देश की सभ्यता ऊँची, परन्तु संस्कृति नीची कही जाएगी. एक देश भौतिक दृष्टि से नीचे के स्तर पर हो, परन्तु आत्मिक स्तर में बहुत ऊँचा उठा हुआ हो, उस देश के वासी दूसरों के दुःख में दु:खी होते हों, दूसरे के कल्याण के लिए अपने स्वार्थ को तिलांजलि देते हों, झूठ, बईमानी, दुराचार से दूर रहते हों, परन्तु वह कारों की बजाये बैलगाड़ियों में चलते हों, महलों की बजाये झोपड़ों में रहते हों, इस अवस्था में वह देश सभ्यता में भले ही पिछड़ा हुआ गिना जाये, परन्तु संस्कृति में उस देश के सामने सिर झुकाना होगा.

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभ्यता तथा संस्कृति में ऊँचा स्थान संस्कृति का है: ऐसी संस्कृति का जिस के आधार में सच्चाई, ईमानदारी, संतोष, संयम, प्रेम आदि अध्यात्मिक तत्व काम कर रहे हों. हवाई जहाज़, कार, टी.वी. की संसार को इतनी आवश्यकता नहीं, जितनी सच्चाई, ईमानदारी, संयम और विश्व प्रेम की. दोनों का होना सबसे अच्छा है, परन्तु दोनों न हों तो संस्कृति का होना सभ्यता से अच्छा है. सभ्यता को संस्कृति की रक्षा के लिए छोड़ा जा सकता है, परन्तु संस्कृति को सभ्यता की रक्षा का लिए नहीं छोड़ा जा सकता. आत्मा के लिए शरीर छूट सकता है, परन्तु शरीर के लिए आत्मा कैसे छूटेगी.

संस्कृति का प्रवाह जीवन के किसी केन्द्रीय विचार से प्रस्फुटित होता है. यह विचार ऐसा होता है जैसे शरीर में आत्मा. आत्मा से शरीर का जीवन है, उस केन्द्रीय-विचार से संस्कृति का जीवन है. यह विचार जितना प्रबल होगा उतनी ही संस्कृति प्रबल होगी, प्राणवती होगी; यह विचार जितना निर्बल होगा संस्कृति उतनी ही निर्बल होगी, प्राणहीन होगी. मिस्र, ग्रीस, रोम बैबीलोन की संस्कृतियाँ

इसलिए नष्ट हो गयीं क्योंकि इन देशों की संस्कृतियों को जीवत रखने वाला कोई ऐसा सबल, सशक्त, प्राणवान विचार नहीं रहा जो इनकी संस्कृतियों को जीवित रख सकता. जिस विचार ने मिस्र को मिस्र, यूनान को यूनान और रोम को रोम बनाया था वह समाप्त हो गया, आत्मा चली गई, शरीर रह गया. परन्तु संस्कृति तो आत्मा है, शरीर नहीं, इसलिए शरीर के रह जाने पर भी आत्मा के न होने के कारण उन देशों का होना-न-होना बराबर है.

भारत लम्बे समय तक पराधीन रहा परन्तु इसकी आत्मा ने पराधीनता को नहीं माना. क्योंकि भारतीय-संस्कृति के आधार में कोई ऐसा केन्द्रीय-विचार था, जो दबाये दब नहीं सका, मिटाए मिट नहीं सका, हटाये हट नहीं सका, जलाये जल नहीं सका, क्योंकि भारतीय संस्कृति के प्राण वेद, उपनिषद रहे हैं, गीता रही है.

## चिड़िया और मानव

**शकुंतला बहादुर**

बिजली के तार पर -
बैठी थी एक नन्हीं चिड़िया अकेली,
न परिवार, न साथी, न कोई सहेली।
शान्त, चिन्तन में मग्न सी, रँगीली,
मानो बूझती हो कोई गूढ़ सी पहेली।।
देर तक वह यों ही बैठी वहाँ रही
न उड़ी, न चहकी, खोयी सी रही। .... शायद ....
उदास थी वो अपने भाग्य पर।
क्षुब्ध सी थी निर्मोही संसार पर।।
नन्हीं सी चिड़िया थी बड़ी भोली।
तभी करुण स्वर में मुझसे यों बोली।।
"बच्चों को पाला मैंने, प्यार से बड़ा किया।
उड़ने का ज्ञान देकर, उनको समर्थ किया।।
अपनी चोंच से मैंने, उन्हें दाना खिलाया ।
घोंसले में लोरी सुना, मैंने उन्हें सुलाया।।

जैसे ही उनके कुछ पंख थे निकले।
अनजान दिशाओं में वे, स्वच्छन्द उड़ चले।।
रह गई हूँ मैं, नितान्त अकेली अब।
न जाने उनसे मैं, मिल पाऊँगी कब?
शायद मुझे मिल भी जाएँ, वे कभी कहीं।
पर निश्चय ही वे, पहचानेंगे मुझे नहीं।।
विशाल से गगन में, मिलन-आस लिये सदा।
उन्मुक्त उड़ूँगी मैं, खोजूँगी उन्हें सर्वदा।।
वन-उपवन में, पर्वतों और उपत्यका में।
उनको पुकारूँगी मैं, दिवस और निशा में।।
सो नहीं पाऊँगी, जागती ही रहूँगी मैं।
बच्चों की याद में, डूबी ही रहूँगी मैं।।"

तभी मन में विचार आया -
"सचमुच ये दुनिया है, अतिशय निराली।
किन्तु हम तो हैं, बड़े ही भाग्यशाली।।
वर्षों हमारे बच्चे, रहते हैं हमारे साथ।
और बुढ़ापे में वे, पकड़ते हैं हमारा हाथ।।
सुख-दु:ख हमारा, सब जानते हैं वे।
चेहरे का भाव भी तो, पहचानते हैं वे।।
चिड़िया बेचारी, अपने लिये ढूँढ़ती है दाना।
लेकिन हमें तो प्यार से, मिले स्वादिष्ट खाना।।
बच्चों के बच्चे भी हैं, प्यार हमें करते।
गोद में बैठकर वे, कहानी भी हैं सुनते।।

**जीवन की संध्या भी, खुशहाल हो जाए यों।**
**तो उदासी मन पर कभी, फिर छाए क्यों?**
**प्रभु की कृपा से हमें, बच्चों का प्यार मिला।**
**निर्मोही इस जग में, सुखमय संसार मिला।।**
**तभी तो सब योनियों में, श्रेष्ठ हैं ये मनुज।**
**पर ये ही कभी बनें देव, और कभी दनुज।।"**

# इण्डिया हटाओ-भारत बनाओ

## निर्मलकुमार पाटोदी

भारत में गाँव है, गली  है, चौबारा है, इण्डिया में सिटी  है, माल  है, पंचतारा  है।
भारत में घर  है, चबूतरा है, दालान  है, इण्डिया में बस-फ़्लैट और मकान  है।
भारत में काका है, बाबा है, दादा है, दादी है, इण्डिया में अंकल-आंटी की आबादी है।
भारत में खजूर है, जामुन है, आम है, इण्डिया में मैंगी, पिज़्ज़ा, माजा का नक़ली आम है।
भारत में मटके हैं, दोने हैं, पत्तल है, इण्डिया  में पोलिथिन, वाटर और वाईन की बोतल है।
भारत में गाय है, गोबर है, कंडें हैं, इण्डिया में चिकन-बिरयानी और अण्डे हैं।
भारत में दूध है, दही है, लस्सी है, इण्डिया में पेप्सी, कोक और व्हिस्की है।
भारत में रसोई है, आँगन है, तुलसी है, इण्डिया में रूम  है, कबाड़ की कुर्सी है।
भारत में मन्दिर है, मण्डप है, पाण्डाल है, इण्डिया में पब  है, डिस्को है, हॉल है।
भारत में गीत है, संगीत है, रिदम् है, इण्डिया में डांस है, पॉप और आईटम है।
भारत में बुआ है, मौसी है, बहन है, इण्डिया में सबके सब 'कजन' है।
भारत में पीपल है, बरगद है, नीम है, इण्डिया में वॉल पर नंगे सीन है।
भारत में प्रेम है, आदर है, सत्कार है, इण्डिया में स्वार्थ है, नफ़रत है और दुत्कार है।
भारत में अनेकों भाषा है, बोलियाँ हैं, इण्डिया में एक अँग्रेजी ही बड़बोली है।
भारत में सीधा है, सहज है, सरल है, इण्डिया में धूर्त है, चालाक है, कुटिल है।
भारत में संतोष है, सुख है, चैन है, इण्डिया दुःखी, बदहवास और बैचेन है।
क्योंकि
भारत को देवों ने, वीरों ने रचाया है, इण्डिया को अँग्रेजी चमचों ने  बसाया है।

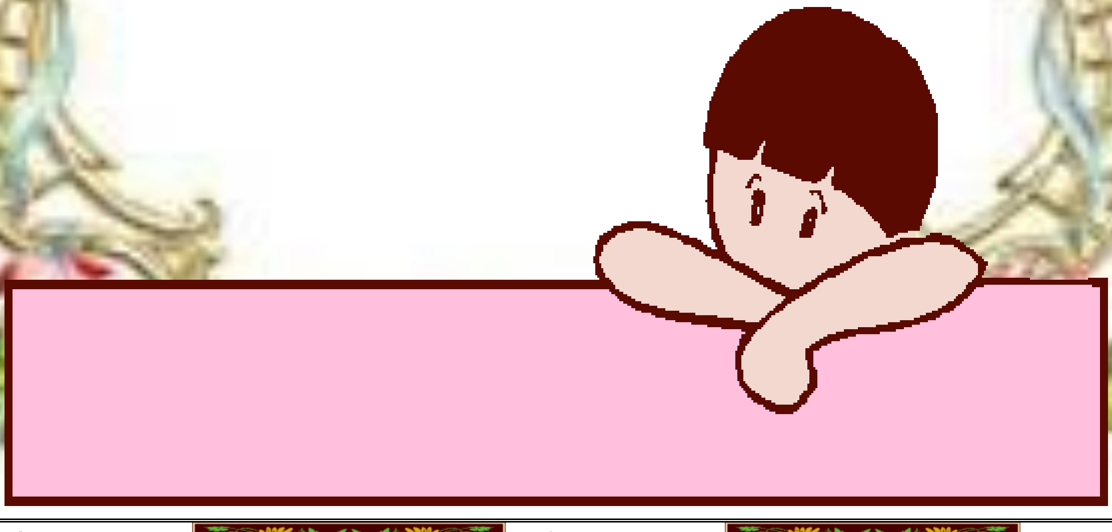

# साहित्य की सुप्त चेतना को जाग्रत करता योगी –रवीन्द्र नाथ ठाकुर

**(रवीन्द्र नाथ ठाकुर की जन्म-तिथि पर विशेष - संपादक)**

**सपना मांगलिक**

वक्ष को जकड़े हुए
बन्धनों को तोड़ दे
शंख गरज-गरज उठे
बार-बार इतना बजे
गर्व टूटे...निद्रा छूटे
जाग उठे...चेतना ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म सात मई अठारह सौ इकसठ को कलकत्ता पश्चिम बंगाल के सभ्रांत कुल में हुआ। वे एक बांग्ला कवि, कहानीकार, गीतकार, संगीतकार, नाटककार, निबंधकार और चित्रकार थे। जिन्हें उन्नीस सौ तेरह में साहित्य के लिए विश्व का सर्वश्रेष्ठ नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्होंने कभी विधिवत शिक्षा प्राप्त नहीं की। एक बार स्कूल में मास्टरजी की डाँट से वह इतना क्षुब्द हो गए कि उन्होंने कभी स्कूल न जाने का निर्णय ले लिया और उसके बाद की उनकी पढ़ाई-लिखाई घर पर ही हुई । मगर उन्होंने व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षा व्यवस्था और अध्यापकों का महत्त्व सदैव ही माना। उनका यह कहना कि – "विश्वविद्यालय महापुरुषों के निर्माण के कारख़ाने हैं और अध्यापक उन्हें बनाने वाले कारीगर हैं।" उनके इस विश्वास को प्रकट करता है। टैगोर ने बांग्ला साहित्य में नए गद्य और छंद तथा लोकभाषा के उपयोग की शुरुआत की। इन्होंने बहुत कम आयु में काव्य लेखन प्रारंभ कर दिया था। यहाँ तक कि भारतीय साहित्य में जापानी काव्य विधा हाइकु में लिखने वाले वह प्रथम साहित्यकार थे। रवींद्रनाथ टैगोर ने 1880 के दशक में कविताओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित की तथा लगभग दस वर्ष बाद मानसी की रचना की। यह संग्रह उनकी प्रतिभा की परिपक्वता का परिचायक है। इसमें उनकी कुछ सर्वश्रेष्ठ कविताएँ शामिल हैं, जिनमें से कई बांग्ला की नई पद्य शैलियों में हैं। साथ ही इसमें कुछ सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य भी हैं।

रवीन्द्र के गीतों में विश्वास कूट-कूट कर भरा होता था। उनका खुद का मानना था कि विश्वास वह पक्षी है जो अन्धकार से पूर्व ही प्रकाश का अनुभव कर लेता है ।

अलविदा !
कहने से पहले
मुझे यह कहना है
जो देखा है, पाया है
अहा ! कितना अनोखा है।

दो देशों के राष्ट्रगान, भारत का राष्ट्र-गान - जन-गण-मन और बांग्लादेश का राष्ट्रीय गान - आमार सोनार बांग्ला को लिखने वाले विश्व के एकमात्र गीतकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर पुरातन पंथी लेखक ना होकर वैश्विक समानता और एकल प्रयास के पक्षधर थे। वह एक ऐसे लोक कवि थे जिनका केन्द्रीय तत्त्व आदमी की भावनाओं की अभिव्यक्ति करना था। उन्हें पढ़ते वक्त ऐसा प्रतीत होता है मानो हमारे स्वंय के भाव सीने की सात परतों के भीतर से निकालकर किसी ने कागज़ पर बिखरा दिए हों । टैगोर

प्रकृति प्रेमी भी थे - उनका यह कथन कि - कलाकार प्रकृति प्रेमी है, उसका स्वामी भी है और दास भी - को दर्शाता है। उनकी रचनाओं में प्रकृति का सजीव चित्रण ही उनकी रचनाओं को बाकी रचनाकारों से पृथक करता है। उनके नाटकों में एकमात्र दुःख या क्षोभ नहीं है, मनुष्य की जीने के प्रति ललक और उसके लिए किया गया संघर्ष भी है। वे अपनी कहानियों एवं उपन्यासों से फौलाद को लोहा और लोहे को फौलाद बनाने की कूबत रखते थे। टैगोर ख़ुद एक उच्च स्तरीय परिवार में मुँह में चाँदी की चम्मच लिए पैदा हुए थे मगर उनके हृदय में निम्न तबके के लोगों का दर्द पलता था, जिसका कारण था सियालदह और शजादपुर स्थित अपनी ख़ानदानी जायदाद के प्रबंधन के लिए 1891 में 10 वर्ष तक उनका वास। वहाँ वह अक्सर पद्मा नदी पर एक हाउस बोट में ग्रामीणों के निकट संपर्क में रहते थे । उनकी चौरासी कहानियों में से वह सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं, जिनमें 'दीनहीनों' का जीवन और उनके छोटे-मोटे दु:ख वर्णित हैं - 1890 के बाद की हैं जिनमें दीदी, पोस्ट मास्टर, काबुली वाला, आधी रात, मास्टर साहब, क्षुधित पाषाण आदि हैं। इन सभी कहानियों में उनका कथा-शिल्प, वर्णन शैली, उपमाएँ अभिव्यक्ति के उस गगन को छू जाती हैं जहाँ तक ना तो उनसे पहले और ना ही उनके बाद या फिर अब तक कोई भी रचनाकार पहुँच पाया है। वे आदमी को अपनी कलम की उड़न-तश्तरी में बैठाकर शब्द-दर-शब्द वहाँ तक ले जाते थे जहाँ उनके पात्र रहते थे जिससे उनकी बोलचाल और भाषा शैली हमें अपनी- सी लगने लगती। उनका कहना है कि, "मनुष्य का जीवन एक महानदी की तरह है जो बहाव में भी अपने लिए नए रास्ते ख़ोज लेता है।" हालाँकि टैगोर के उपन्यास उनकी कविताओं और कहानियों जैसे असाधारण नहीं हैं, लेकिन वह भी उल्लेखनीय हैं। इनमें सबसे ज़्यादा लोकप्रिय हैं - गोरा और घर और बाहर।

वह प्रगतिवादी थे। उनका यह कहना कि फूल चुन कर एकत्र करने के लिए मत ठहरो। आगे बढ़े चलो, तुम्हारे पथ में फूल निरंतर खिलते रहेंगे - उन्होंने अपने जीवन पर भी लागू किया। वे "एकला चलो रे" की नीति के तहत लेखन की हर विधा, चित्रकारी और संगीत की खुशबू को फैलाते चलते ही चले गए, बिना रुके बिना थमे। एक अवचेतन प्रक्रिया के रूप में आरंभ टैगोर की पांडुलिपियों में उभरती और मिटती रेखाएँ ख़ास स्वरूप लेने लगीं। टैगोर ने कई चित्रों को उकेरा जिनमें कई बेहद काल्पनिक एवं विचित्र जानवरों, मुखौटों, रहस्यमयी मानवीय चेहरों, गूढ़ भूपरिदृश्यों, चिड़ियों एवं फूलों के चित्र थे। टैगोर प्रकृति प्रेमी थे। वह कहते थे कि कलाकार प्रकृति का प्रेमी है अत: वह उसका दास भी है और स्वामी भी। उनका कहना था कि अगर हम सूरज के चले जाने के डर से आँखें नहीं खोलेंगे तब हमारी आँखें रात के सितारों की जगमगाहट कैसे देख पाएँगी। उनका यह भाव उनकी इस कविता में प्रकट होता है -

जब वासनाएँ प्रबल होकर
मुझे चारों तरफ से
घेरने लगें...ऐसे में
हे पवित्र...हे चिर-जागृत
रूद्र-वीणा
बजाओ ।

तकनीकी रूप में टैगोर ने सर्जनात्मक स्वतंत्रता का आनंद लिया। स्याही का प्रयोग कर बनाए उनके चित्रों में एक स्वच्छंदता दिखती है क्योंकि वह साधारण चीजों जैसे कूची, कपड़ा, रूई के फाहों, और यहाँ तक कि अँगुलियों के द्वारा भी चित्र और उनकी मुद्राओं को आकार देने में कुशल थे। यह उनके

मन की आज़ादी और आत्मविश्वास को प्रदर्शित करते हैं। 7 मई उन्नीस सौ इकसठ को भारत सरकार ने टैगोर पर डाक टिकट जारी किया। उनके कई कविता संग्रह और नाटक आए, जिनमें सोनार तरी 1894, सुनहरी नाव तथा चित्रांगदा 1892, उल्लेखनीय हैं। वास्तव में टैगोर की कविताओं का अनुवाद लगभग असंभव है और बांग्ला समाज के सभी वर्गों में आज तक जनप्रिय उनके 2,000 से अधिक गीतों, जो 'रबींद्र संगीत' के नाम से जाने जाते हैं, पर भी यह लागू होता है ।

टैगोर की कविताओं को सबसे पहले विलियम रोथेनस्टाइन ने पढ़ा था और पश्चिमी जगत के लेखकों, कवियों, चित्रकारों और चिंतकों से उन का परिचय करवाया था। उन्होंने ही इंडिया सोसायटी से इसके प्रकाशन की व्यवस्था की। शुरू में 750 प्रतियाँ छापी गईं, जिनमें से सिर्फ़ 250 प्रतियाँ ही बिक्री के लिए थीं। बाद में मार्च 1913 में मेकमिलन एंड कंपनी लंदन ने इसे प्रकाशित किया और 13 नवम्बर 1913 को नोबेल पुरस्कार की घोषणा से पहले इसके दस संस्करण छापने पड़े। यीट्स ने टैगोर के अँग्रेज़ी अनुवादों का चयन करके उनमें कुछ सुधार किए और अंतिम स्वीकृति के लिए उन्हें टैगोर के पास भेजा और लिखा - 'हम इन कविताओं में निहित अजनबीपन से उतने प्रभावित नहीं हुए, जितना कि यह देखकर कि इनमें तो हमारी ही छवि नज़र आ रही है।' बाद में यीट्स ने ही अँग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका लिखी। उन्होंने लिखा कि कई दिनों तक इन कविताओं का अनुवाद लिए मैं रेलों, बसों और रेस्तराओं में घूमा हूँ। उनका गुरुदेव की कविताओं के बारे में कहना था कि – "यह कवितायें जैसे जल में मीन का मौन है, पृथ्वी पर पशुओं का कोलाहल और आकाश में पंछियों का संगीत पर मनुष्य में जल का मौन पृथ्वी का कोलाहल और आकाश का संगीत सबकुछ है। कल्पना की शक्ति ने उनकी कला को जो विचित्रता प्रदान की उसकी व्याख्या शब्दों में संभव नहीं है। कभी-कभी तो ये अप्राकृतिक रूप से रहस्यमयी और कुछ धुंधली याद दिलाते हैं। और मुझे बार-बार इन कविताओं को इस डर से पढ़ना बंद करना पड़ा है कि कहीं कोई मुझे रोते हुए न देख ले।"

अँग्रेजी में प्रकाशित गीतांजलि की भूमिका प्रसिद्ध इंग्लिश कवि डब्लू बी यीट्स ने लिखी। और यह किताब बाद में नोवल पुरस्कार पाने वाली प्रथम भारतीय साहित्य पुस्तक भी बनी ।

1901 में टैगोर ने पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्र में स्थित शान्तिनिकेतन में एक प्रारंभिक विद्यालय की स्थापना की। जहाँ उन्होंने भारत और पश्चिमी शिक्षा मूल्यों को मिलाने का प्रयास किया। वह विद्यालय में ही स्थायी रूप से रहने लगे और 1921 में यह विद्यालय विश्व भारती विश्वविद्यालय में तब्दील हो गया। 1912 में जब गुरुदेव लंदन गए तब तक उनकी कविताओं की पहली पुस्तक का अँग्रेज़ी में अनुवाद प्रकाशित हो चुका था, और इस यात्रा के दौरान पहली बार वहाँ के प्रमुख समाचार पत्र 'द टाइम्स' में उनके सम्मान में दी गई एक पार्टी का समाचार छपा जिसमें ब्रिटेन के कई प्रमुख साहित्यकार यथा डब्ल्यू.बी.यीट्स, एच.जी. वेल्स, रोबेंसटाइन आदि उपस्थित थे. टैगोर ना केवल कला के प्रत्येक क्षेत्र में दखल रखते थे अपितु बहुभाषी भी थे, हिन्दी एवं बांग्ला के साथ उनकी पकड़ अँग्रेजी पर भी खूब मज़बूत थी जैसा कि उनकी पुस्तक 'द क्रेसेण्ट मून' की समीक्षा करते हुए एक समाचार पत्र ने लिखा था कि इस बंगाली (रवीन्द्र नाथ ठाकुर) का अँग्रेजी भाषा पर जैसा अधिकार है वैसा बहुत कम अँग्रेजों का होता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जलियाँवाला काण्ड के विरोध स्वरूप अपना 'सर' का ख़िताब लौटा दिया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस हत्याकाण्ड का मुखर विरोध किया और विरोध स्वरूप अपनी 'नाइटहुड' की उपाधि को वापस कर दिया था। आज़ादी का सपना ऐसी भयावह घटना के बाद भी पस्त नहीं हुआ। इस घटना के बाद आज़ादी हासिल करने की इच्छा और ज़ोर से उफन पड़ी। यद्यपि उन दिनों संचार के

साधन कम थे, फिर भी यह समाचार पूरे देश में आग की तरह फैल गया। 'आज़ादी का सपना' पंजाब ही नहीं, पूरे देश के बच्चे-बच्चे के सिर पर चढ़कर बोलने लगा. उस दौरान हज़ारों भारतीयों ने जलियाँवाला बाग़ की मिट्टी से माथे पर तिलक लगाकर देश को आज़ाद कराने का दृढ़ संकल्प लिया।

1912 में टैगोर ने लम्बा समय भारत से बाहर बिताया। वे ना केवल यूरोप, अमेरिका, अपितु पूर्वी एशिया के देशों में भी व्याख्यान देते व काव्य पाठ करते रहे और भारत के मुखर प्रवक्ता बन गए। गुरुदेव में अहंकार और गुमान बिलकुल भी नहीं था। जो भी लोग शांति निकेतन उनसे मिलने आते उनकी सादगी, सहजता के कायल हो जाते थे -

मेरा मस्तक...अपनी
चरणधूलि तले झुका दे
मेरे सारे अहंकार को
आँखों के पानी में डुबा दे।

वह दंड देने और बदला लेने की व्यवस्था में यकीन नहीं करते थे ।उनका कहना था कि सबसे उत्तम बदला क्षमा करना है, अगर आप गलतियों को रोकने के लिये दरवाजे बन्द करते हैं तो सत्य भी बाहर ही रह जाएगा। ठीक उसी तरह जिस प्रकार चंद्रमा अपना प्रकाश सम्पूर्ण आकाश में फैलाता है परंतु अपना कलंक अपने ही पास रखता है। उनका यह गीत इस भाव की पुष्टि करता है –

घनघोर बादल आलस भरे
डूबी निद्रा में रात
जाओ ना जाओ ना, करो
करुणा की बरसात।

समय मगर परिवर्तनशील होता है जो कि जीवन और मृत्यु के मध्य सदैव गति करता है, टैगोर भी इससे अनजान नहीं थे; वो कहते थे कि - " समय परिवर्तन का धन है। परंतु घड़ी उसे केवल परिवर्तन के रूप में दिखाती है, धन के रूप में नहीं। मनुष्य का जीवन एक महानदी की भाँति है जो अपने बहाव द्वारा नवीन दिशाओं में राह बना लेती है। जिस तरह घोंसला सोती हुई चिड़िया को आश्रय देता है उसी तरह मौन तुम्हारी वाणी को आश्रय देता है।" और सात अगस्त उन्नीस सौ इकतालीस में इस महान कवि, चित्रकार भारत के राष्ट्रगान के प्रसिद्ध रचयिता और बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी युग पुरुष ने कलकत्ता में अपनी रूह को विश्राम देते हुए मौत का आश्रय लिया।

गुरुदेव साहित्य, कला और संस्कृति से जुड़े लोगों के हृदयों में हमेशा विद्यमान रहेंगे और पूरा भारत ऐसे युग-पुरुष के अपनी मिट्टी में जन्म लेने और विश्व में उसका गौरव बढ़ाने के कारण हमेशा गौरवान्वित रहेगा।

मृत्यु के सन्दर्भ में उनका लिखा यह गीत -

जिस दिन
मृत्यु...तेरे द्वार पर आकर
खड़ी हो जायेगी
उस दिन कौन-सा धन दोगे उसे?
मैं खाली हाथ अपने अतिथि को
विदा नहीं करूँगा
अपने प्राणों के पंक्षी को
उसके सम्मुख कर दूँगा।

# डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

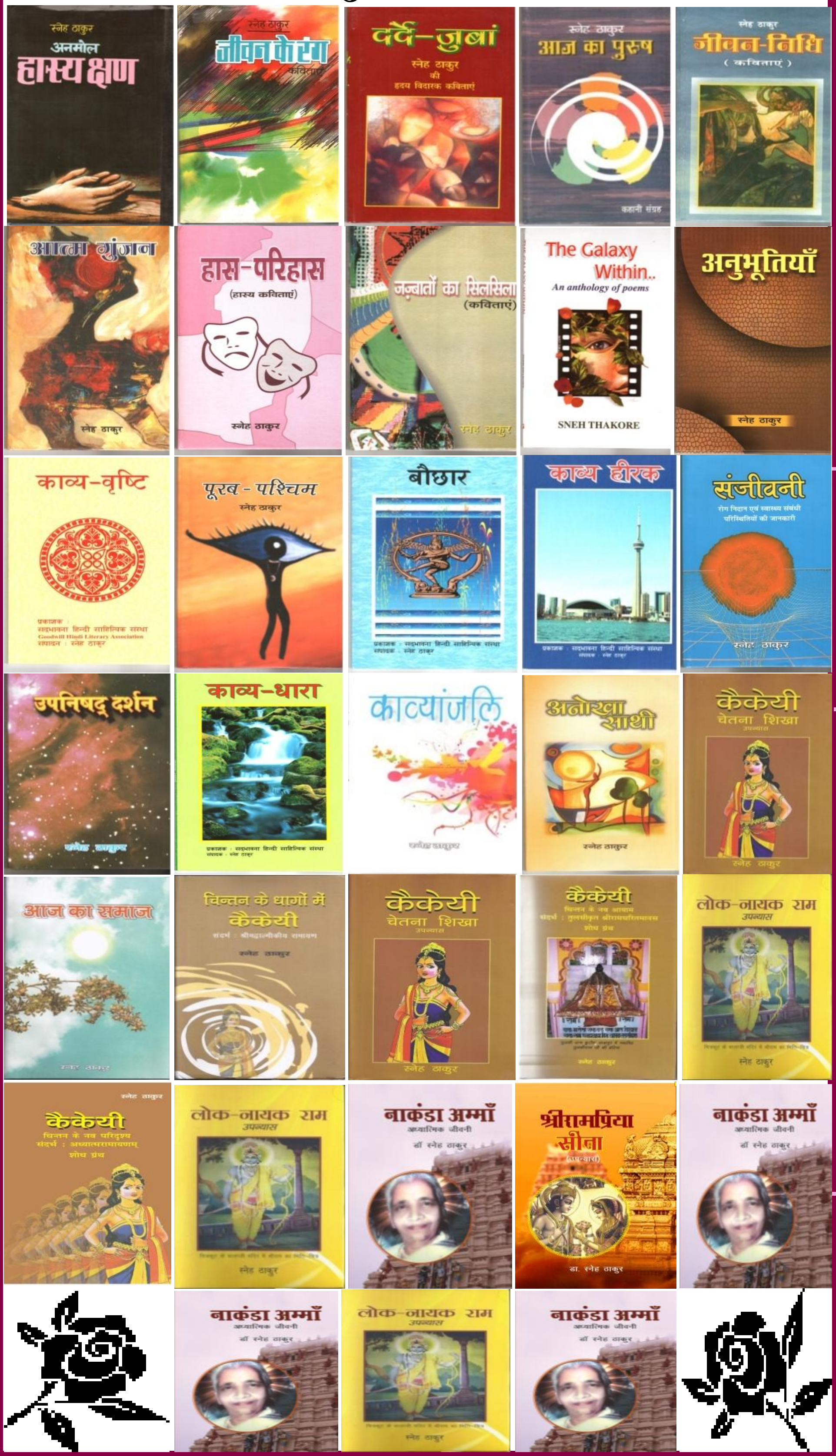

# डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

| | |
|---|---|
| नाकंडा अम्माँ | ( अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण ) |
| लोक-नायक राम | ( उपन्यास, तृतीय संस्करण ) |
| नाकंडा अम्माँ | ( अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण ) |
| नाकंडा अम्माँ | ( अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण ) |
| श्रीरामप्रिया सीता | ( उपन्यास ) |
| नाकंडा अम्माँ | ( अध्यात्मिक जीवनी ) |
| लोक-नायक राम | ( उपन्यास, द्वितीय संस्करण ) |
| कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण ( शोध-ग्रन्थ ) | |
| लोक-नायक राम | ( उपन्यास ) |
| कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस ( शोध-ग्रन्थ ) | |
| कैकयी : चेतना-शिखा | (उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण) |
| चिन्तन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ) | |
| आज का समाज | ( सामाजिक लेख-संग्रह ) |
| कैकेयी : चेतना-शिखा | (उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित) |
| अनोखा साथी | ( कहानी-संग्रह ) |
| काव्यांजलि | ( काव्य-संग्रह ) |
| काव्य-धारा | ( संकलन, संपादन एवं प्रकाशन ) |
| उपनिषद दर्शन | ( दार्शनिक एवं अध्यात्मिक ) |
| संजीवनी | ( स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख ) |
| काव्य हीरक | ( संकलन, संपादन एवं प्रकाशन ) |
| बौछार | ( संकलन, संपादन एवं प्रकाशन) |
| पूरब-पश्चिम | ( आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह ) |
| काव्य-वृष्टि | ( संकलन, संपादन एवं प्रकाशन ) |
| अनुभूतियाँ | ( काव्य-संग्रह ) |
| The Galaxy Within | (A collection of English poems) |
| ज़ज़्बातों का सिलसिला | ( काव्य-संग्रह ) |
| हास-परिहास | ( हास्य कविताएँ ) |
| आत्म-गुंजन | ( अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत ) |
| जीवन-निधि | ( काव्य-संग्रह ) |
| आज का पुरुष | ( कहानी-संग्रह ) |
| दर्दे-ज़ुबाँ | ( नज़्म व ग़ज़ल संग्रह ) |
| जीवन के रंग | ( काव्य-संग्रह ) |
| अनमोल हास्य क्षण | ( नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित) |

## प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२, भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तरर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित